आप समझ लीजिये फ्रीडम् अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर स्वतंत्र और निरपेक्ष बल्कि साहब और मेम दोनों की स्वतंत्रता को एक साथ तौलने में मेम साहब की आज़ादी का पलरा झुका हो-एक उमदा नमूना सभ्यता का यह भी है कि मेम साहब रडांपे का दुःख एक दिन भी न उठाने पावें मियां कबर में पहुंचे कि बीबी साहबा के लिये दूसरे तैयार फिर एक नहीं चार २ बार ऐसा ही मियां कबर में पहुंचते जांय बीबी दूसरा २ करती जांय-स्त्रियों को परदे में रखना सभ्यता में बड़ा भारी धब्बा है सभ्यता जब आने लगती है तो पुराने लोग पुरानी बात पुराने ख़याल से घिन उपजती जाती है औद्धत्य ज़ोश और तेज़ मिज़ाजी बेतरह तबियत में समा जाती है आदमी के conscience विवेचना शक्ति पर वह बारीक सान धर जाती है कि ईश्वर का अस्तित्व या मज़हबी उसूलों की बारीकियां उस बारीक सान में छू जाते ही कट फट कर सात टुकड़े हो जाती हैं-और एक बात हम तुम से बड़ी गुप्त बतलाये देते हैं इसे अपने मन ही में रखना वह यह है कि वहम सब सभ्यता का सार है बिना इसके सभ्यता किसी तरह नहीं आ सक्ती सभ्यता के गुण और लक्षण अधिक जाना चाहो तो लंडन पेरिस या न्यूयार्क की हिस्टरी और मिस्टरी मन चित दे खूब पढ़ो-और भी दो तीन किताबों का नाम झट सट गिना गये सभ्यता की ये सब बातें उनके मुह से सुनतेही मैं सन्न हो गया और जी न भरा उठ खड़ा हुआ अब मौलवी साहब की राय भी इस बारे में लेना चाहिये इसलिये शाम के वक़्त मसजिद के पास जा निकला और जो बड़े नमाज़ी पुररोज़े और आबिद मालूम होते थे उन्ही का दामन पकड़ा और बड़ी आजिज़ी के साथ उन से पूछा-मौलवी साहब बोले तुम्हे किस बात का शक है आप किस मुराद से मेरे पास आये इतना कह पीनक में आगये-मैं ने कहा मौलवी साहब आप से एक बात दरियाफ़्त करना है-बोले कहो-मैंने पूछा सभ्यता किसको कहते हैं? सभ्यता शैतानी लब्ज बोलते हो मेरी ज़बान में कहो तो मैं समझूं-अब

मुझे और भी कठिनाई आपड़ी कि मैं इन्हें किस तरह समझाऊं थोड़ा सा सोच सांच कहा जनाब के दस्तूर और चाल चलन को सभ्यता कहते हैं थोड़ी देर के गौर के बाद मौलवी साहब बोले-भाई हमारे लोगों का तो यही दस्तूर हैं कि निहायत मैले और कसीफ़ बने रहो नहाने धोने की कुछ ज़रूरत नहीं पर नमाज़ दिन में ६ दफ़ा पढ़ो। शराब तो हम हाथ से छूते नहीं पर मदक और चांडू का हद्द से ज़ियादा इस्तेमाल रखते हैं-बेवा की शादी हमारे यहां किसी तरह पर मना नहीं है दूसरे यह कि किसी की खूबसूरत बहू बेटी हो छीन छोर जैसे मिले अपनी करलेनी-हाल की लखनऊ की बादशाहत को सभ्यता का पूरा नमूना समझिये आप को और ज़ियादा इसके बारे में दरियाफ़्त करना हो तो लखनऊ या दिल्ली में जाय देख आइये-इनकी बातें सुन मैने कहा अब पण्डित जी की भी सुनलेना चाहिये काशी चला गया क्योंकि कहावत है थाली खो जाती है तो कुंडे में खोजते हैं मैं मणिकर्णिका पर जा बैठा एक पण्डित जी लदपान ढीले नंगे सिर दुपट्टा कंधे पर धरे देख पड़े उन्हें भव्य मूर्ति के देख दूरही से प्रणाम कर कहा पण्डित जी मुझे आप से कुछ पूछना है यदि आज्ञा हो तो कहूं मै काशीका नाम सुन प्रयाग से अपनी शङ्का निवृत करने को आया हूं-पण्डित जी ने कहा आप धन्य हो जो इतना परिश्रम कर यहां आये हो कहिये आप की क्या शङ्का है? मैने कहा मुझे ठीक ठीक बतलाइये सभ्यता किसे कहते हैं पण्डित जी सुंघनी सूंघ २ तमाम श्रुति और स्मृति इसपर गा गये और धर्म शास्त्रों को उधेर डाला-मैने कहा महाराज मुझे इतनी धारणा शक्ति नहीं है मुझे थोड़े में समझा दीजिये-पण्डित जी बोले सभ्यता समाज के शुद्ध व्यवहार को कहते हैं और यह सर्बथा भ्रम है जैसा अब के नवशिक्षित नितान्त असभ्य पशुओं के आचरण योग्य कर्मों को सभ्यता समझ सभ्य मण्डली के खंभ बनते हैं-सभ्यता हमारे रघुकुल मुकुट मणि श्री रामचन्द्र तथा और २ पूर्वकाल के राजाओं के समय में थी

सच पूछिये तो उसी समय के आचरण का नाम सभ्यता था मैंने कहा भला पण्डित जी यह भी चाल सभ्यता की थी जैसा आप मूछ उघारे नंग धिड़ंग बैठे हैं-नहीं २ पृथक् २ समाज की जुदी २ चाल थी पर व्यवहार सब का एकही सा था दुष्कर्म और अत्याचार नहीं होने पाते थे भीखा नहीं था शास्त्र और वेद की आज्ञा के विरुद्ध मन मानी भेड़िया धसान नथी हम लोग इसी तरह रहते थे राजा लोगों की कुछ और ही चाल थी साधारण प्रजा का कुछ और ही बर्त्ताव था-पण्डित जी की ये बातें सुन मैं चुप हो सोचने लगा पण्डित जी के कहने के अनुसार सभ्यता तो अब कहीं रही न गई बल्कि अब देश का देश असभ्य और अधम हो गया जिससे २ मैंने पूछा सब अपनी ही अपनी गीत गा गये कुछ नहीं सभ्यता चलन बाज़ार है जिसमें बड़े से बड़े दरजे के लोग और छोटे से छोटे दरजे के भी सबी नये हैं और उस बाज़ारू चलन की लीक से भटक इधर उधर नहीं खसक सक्के पर इतना अवश्य कहेंगे कि सभ्यता निरी ऊपर से चूना पोती क़बर के समान है जिन्हें लोग परम सभ्य कहते हैं उनके भीतरी आचरण पर ध्यान देने से मन में घिन उपजती है इसी अच्छे जो घिनौनी सभ्यता के कभी आज तक छांड़े नहीं गये॥

परम मित्र।

परम मित्र की पदवी वही पा सक्ता है जिसके संसर्ग या साथ देखने या जिसके कतंब या दबाव से हित और पथ्य की बातें सूझैं इस समय भारत वर्ष का परम मित्र कोई ढूंढ़ै या किसी से पूछे तो जल्दी कोई नहीं बतला सक्ता यदि इसकी शर्तं बान्ध दी जाय तो भी बतलाना सहज नहीं है-परम मित्र उस दोस्त को कहते हैं जिसका दर्जा सब से ऊंचा हो ख़ैर हम बिना फीस या दक्षिणा पाये

पाये सेंत मेंत बतलाए देते हैं कि भारत वर्ष का परम मित्र दरिद्र है कि जिसके संसर्ग से हमें अनेक बातें सूझती जाती हैं और कितनी एक भविष्य में सूझेंगी और हज़ारों किम्बा लाखों क़िस्म की बातें तो पहले सूझ चुकी हैं -किसी काल में यह हमारे परम सखा ब्राह्मणों के लिये तो मानो कल्प वृक्ष थे इन्हीं महात्मा के दिव्य दशा के दिनों में बेद और बेदांग पूर्ण रूप से प्रगट था बस एक यही ऐसे हितू थे कि ब्राह्मणों के तपस्स्वाध्याय रूपी महीपति को प्रतिक्षण सावधान रखते थे वह इन्हीं की बताई हुई युक्ति थी कि जिससे ब्राह्मणों ने इन्द्रियों का दुर्व्यसन माँड़.सा पसा पसा के महा कर्मनाशा नदी में फेंक दिया था कि जिसको आज कल के ब्राह्मण कुतिया के समान लपलपी जीभ से चाट रहे हैं यह नहीं सोचते कि हमारे पूर्ब पुरुषों ने इस विषयाशक्ति को घिनौनी बस्तु समझ त्याग दिया है-जिस समय हमारे परम मित्र दरिद्र जो हमारी तपोमयी राजलक्ष्मी की रक्षा और विद्या गुण रूप कोष के बढ़ाने पर सन्नद्ध थे हमारा वही भोजपत्र जो अब केवल रक्षा यंत्र में बर्ता जाता है दिव्य जुलाहों का रचित अखंड बस्त्र था हमारा वही मृगचर्म जो अब केवल यज्ञोपवीत संस्कार के समय दृष्टि गोचर होता है हमारा मांगलिक आभूषण था बनों में पैदा कंदमूल फल तथा साग पात और वह झरनों का पानी अब जो न मालूम किसके काम में आता है हमारे देव पितृ कार्य का सर्वस्व था-उसी अवस्था में उक्त परम मित्र की प्रेरणा से अनेक साहित्य और सृष्टि की उपकारक वस्तु एकत्र की गई हज़ारों क़िस्म के यंत्र औज़ार अस्त्र शस्त्र युद्ध शिक्षा और नीति के सूत्र रचे गये-उक्त परम मित्र ने जब देखा कि ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र चारो भाई अपने २ अनुकूल साहित्य और सामग्री से परिपूर्ण हो गये हैं तो एकाएक अन्तर्ध्यान हो गये और ऐसी डुब्बी मारी कि समुद्र पार हो रहे किसी को कुछ ख़बर नथी कि आप कहां बिराज रहे हैं कई शताब्दी के पश्चात् ज्ञात हुआ कि द्वीप द्वीपान्तरों की मास्टरी कर रहे थे वहां भी जाकर ऐसा कुछ उपाय बतलाया कि उन

द्वीपान्तर वासियों के सब अभाव दूर हो गये और सर्वाङ्ग परिपूर्ण हो वे सब द्वीप द्वीपान्तर वासी भारत का बड़ा नाम सुन अपनी पूर्णता का भारत की पूर्णता के साथ मिलान करने को दौड़े जिन के साथ ही साथ यह हमारे परम मित्र भी लौट आये और सब की आंखों के खोलने की मुनादी कर रहे हैं पर कोई इनकी बात जी लगा के नहीं सुन्ता कारण यह कि इनके उत्तम २ उपदेशों को विलायतियों ने छीन लिया और इधर जो कुछ उपदेश कर गये थे उस में उलट पुलट हो गई अब कुछ दिन से इन्हों ने फिर उपदेश करने का आरंभ किया है ब्राह्मणों को पुरानी उत्तम बातें बतलाना चाहते हैं तो दुर्व्यसन और अनाचार मुंह पकड़ता और कहता है कि चुप रहो अभी हमारा ठेका बाकी है-छत्रियों की तरफ झुक के कुछ कहा चाहते हैं तो श्रोताओं के कान को आलस और अनुत्साह उंगलियों से बंद कर देते हैं और बनिऔटी में तो अभी इनको कोई कुछ समझता ही नहीं अब इनका इरादा है कि दूसरे ढंग का कानून और क़ायदा बनावें और एक नये ढंग का कमीशन नियत करें-इनको आशा है कि अङ्गरेज़ी कानून और क़ायदों से इनको बड़ी मदद मिलेगी शाहन्शाह कलियुग ने वादा किया है कि हे हमारे परमेष्ट गुरु आप घबराइए मत हमने आबकारी और अदालत स्टाम्प और रजिस्टरी के सरिश्ते को आप की मदद के लिये लिखा है और देहात के पास कोल डोम और शहर के जुआरी गुंडे सब किस्म की रंडियां आप की मदद के लिये मुस्तैद हैं-इस से ज्ञात होता है कि हमारे परम मित्र का उपदेश फिर कभी चमकेगा॥

गीतासार समुच्चय।

पहले के आगे से।

आठवें अध्याय में ब्रह्म अर्थात् जीव की मुक्त अवस्था; अध्यात्म

अर्थात् प्रकृति के कार्य ; कर्म अर्थात् प्राणी मात्र की सृष्टि का मुख्य कारण; सबों को बतलाय और इन सबों को उसी परमात्मा का रूपान्तर या उसकी सत्ता का परिणाम सिद्ध कर भगवान् कहते हैं-

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुत्का कलेवरम् ।
यः प्रयाति समद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

अन्तकाल में जो मुझे सुमिरता हुआ कलेवर छोड़ता है वह मुझे पा जाता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है-सच है "अन्त बना तो सब बना„ "All is well that ends well हम कई बार लिख चुके हैं कि आदमी के भले या बुरे होने की मरण अवस्था कसौटी है-जो भले और सरल चित्त हैं उन्हें जांकन्दनी का क्लेश नहीं सहना पड़ता और उनकी चैतन्य मृत्यु होती है-

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तंतमेवेति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

जिस२ बात पर मन लगाये हुये अन्त में मनुष्य देह छोड़ता है उसी२ को दूसरे जन्म में पाता है—इस लिये कि जन्म पर्यन्त सदा यह उसी के ध्यान में मग्न रहा है-इसी से कहा है "अन्तेमतिःसा-गतिः„ तो उचित है कि संसार के सब काम करता हुआ भी सर्वा-न्तरयामी उस बड़े प्रभु को याद करता रहे अभ्यास पड़ा रहेगा तो अन्त में भी उसका स्मरण बना रहेगा-

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥

अभ्यास के अनुसार योग में आरूढ़ हो मन को सब ओर से हटाये हुये इसलिये कि मन बड़ा चंचल है अनेक बिषयों में प्रवृत्त

रह एकाग्र होताही नहीं किन्तु अभ्यास के द्वारा उसे एकाग्र कर जो आत्म चिन्तन में लगे हैं वह उस परम पुरुष को पा जाते हैं—किस भांत उसका चिन्तन करे सो आगे कहते हैं-

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्य ः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥
प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् सतं पुरुषमुपैति चाद्यम् ॥

सर्वज्ञ; पुराण अर्थात् अनादि सिद्ध; सबों का नियन्ता; सूक्ष्म से भी सूक्ष्म; स्थावर जंगम यावत् जीवधारी मात्र का भरण पोषण करने वाला; जो मलिन मन और मलिन बुद्धि के हैं उनकी पहुंच के बाहर; सूर्य के सदृश प्रकाशमान्; तम अन्धकार के परे; ऐसे पुरुष को भक्ति युक्त स्थिर चित्त हो योग बल से सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा भ्रुकुटी के मध्य भाग में प्राण को स्थिर कर जो उसे ध्यानस्थ हो स्मरण करता है सो दिव्य परमात्मा स्वरूप उस परम पुरुष को पा जाता है—अर्थात् उसमें लीन हो जाता है—भक्ति को इसमें भी प्रधान रक्खा केवल ज्ञान से कुछ नहीं होता; ऐसों का ज्ञान केवल कठहुज्जत मात्र के लिये है-

आगे योगधारणा का एक दूसरा प्रकार और कहते हैं—

"सर्वद्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्या ध्यायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥

आंख नाक कान आदि देह के जितने छिद्र हैं जिनके द्वारा हम को बाहर के पदार्थों का ज्ञान होता है उन सबों को मूंद मन को सब विषयों से रोक अपने हृदय में स्थापित कर और प्राण वायु को ब्रह्माण्ड में चढ़ाय योग धारणा में स्थित हो—ओम् इस एकाक्षर

ब्रह्म को स्मरण करता और मुझे याद करता हुआ जो इस शरीर को त्यागता है वह परम गति को पा जाता है—

ओमित्येकाक्षरं ब्रम्ह ब्याहरन्मामनुस्मरन्। यःप्रयातित्यजन्देहं स याति परमां गतिम्। अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थनित्ययुक्तस्य योगिनः॥ मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमसाश्वतम्। नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

अनन्य चित हो जो मुझे सर्बदा निरन्तर स्मरण करता है नित्य युक्त उस योगी को मेरा मिलना सुलभ है—वे महात्मा जो मुझे पा गये हैं फिर वे इस दुःख के आलय संसार में नहीं जन्म लेते मुक्त हो जाते हैं जो संसारी जीवों के लिये परम दुर्लभ है—इस तरह कई श्लोकों में अपुनर्जन्म और मुक्ति को कह सिद्धान्त वाक्य यह कहते हैं—

"पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्"॥

जिसमें सम्पूर्ण भूत मात्र स्थित हैं और जो इस चर अचर जगत भर में व्याप्त है उस परम पुरुष को हम एकाग्र भक्ति के द्वारा पाने के योग्य हैं केवल यही एक उपाय है दूसरी नहीं—झूठी टांय २ करने वाले शुष्क ज्ञानी देखें और समझें कैसा बड़ा दरजा भक्ति का है—इसमें सन्देह नहीं भक्ति के द्वारा उसका मिलना जैसा सहज है वैसा ज्ञान और बैराग्य से नहीं विरक्त और ज्ञानी भी जो उसे पाये होंगे तो भक्तिही का सहारा पाय—तिमिरावृतभक्ति Blind devotion भली प्रकाशमय ज्ञान और बैराग्य अच्छा नहीं—इसलिये कि जितनाही ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जायगा और बिश्वास तथा श्रद्धा का अंकुर भी मन में न रहा उतनाही वह ज्ञान मनुष्य को कुटिल हृदय का करता जायगा

कुटिलाई से उसका मिलना फिर कहां–

नवे अध्याय में श्रद्धा रहित लोगों के सम्बन्ध में यों कहते हुये अध्याय का आरंभ करते हैं–

"अश्रद्धधानाः पुरुषाः धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि" ॥

भगवान् कहते हैं मेरे इस धर्म पर श्रद्धा न रखनेवाले पुरुष मुझ को न पाय मृत्यु रूप इस संसार में फिर लौट आते हैं–

"मयाततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि नचाहं तेष्ववस्थितः" ॥

चार अचर यह सब जगत् मेरी उस मूर्ति से व्याप्त है जो अव्यक्त है (अर्थात् अतीन्द्रिय होने से जिसका ज्ञान हम को अपनी बाह्य इन्द्रियां आंख नाक कान इत्यादि के द्वारा नहीं होता ध्यानस्थ योगी जन कदाचित् उसे जान सक्ते हो) यह संपूर्ण विश्व मुझ में है मैं उसमें नहीं हूं–तात्पर्य यह कि मेरी सत्ता से यह सब है किन्तु इस संसार की सत्ता मेरे लिये कोई फाइदे की नहीं हैं–

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

सब में व्याप्त जैसा यह वायु बिना किसी का संग किये आकाश में फैल सब ठौर जा सक्ता है वैसाही ये सब भूत मात्र मुझ में स्थित या मेरा सहारा लिये हैं–अर्थात् वायु को अपने रहने के लिये जैसा आकाश है वैसाही भूत मात्र को अपने रहने के लिये मैं हूं–सृष्टि के अन्त में यह संसार मुझ में लय हो जाता है जब सृष्टि का आरंभ होता है तब फिर पहले के नाईं सब वैसाही रच दिये जाते हैं जैसा श्रुति

भी है "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्" जीव जो चैतन्य रूप है पर इस जड़ जगत् का साथ पाय मेरी मोहिनी प्रकृति माया के बश में हो कर्म में आसक्ति रख कर्म फल के भोगने को बार२ जन्म लेता है—जीव के अधोगमन का यही कारण है—"भूमिरापो नलोवायुः" इस श्लोक में भगवान् ने अपनी ८ प्रकृति बतलाई है जो सब जड़ हैं इन आठों के अतिरिक्त एक जीव रूप उसकी प्रकृति है "ययेदं धार्यते जगत्" जिस्से यह संपूर्ण जगत् धारण किया जाता है—देह छूट जाने पर भी वे आठो प्रकृतियां अणु रूप से देही का अनुगमन करती हैं फिर जन्म लेने पर आठो उसके साथ फिर उत्पन्न होती हैं—जीवात्मा और उस में अन्तर इतनाही है कि—

"नच मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥

जीवात्मा कर्म की बासना में लिप्त है परमेश्वर सब के कामो का देखनेवाला उदासीन की नाईं स्थित है कर्म में उसकी आसक्ति नहीं है इस से कर्म के बन्धन से मुक्त है—

"मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगाद्विपरिवर्त्तते॥

मुझ को अपना अधिष्ठाता कर प्रकृति चर अचर जगत् को सृजती है इसी कारण जगत् की सृष्टि और प्रलय बार२ होता रहता है यह जगत् उस्से अभिन्न रह कर भी प्रकृति की करतूत से भिन्न है अत एव सदा एक रूप में नहीं रहता अनित्य है—शेष—

पुस्तक प्राप्ति।

चपला।

गोस्वामी श्री किशोरी लाल जी की ओजस्विनी लेखिनी का

यह उपन्यास निराले ढंग का नमूना है–जिस्में गोस्वामी जी ने इन दिनों के साधारण गृहस्थों को जो २ कठिनाइयां आ पड़ती हैं–जैसा लड़के लड़कियों के व्याह में नाड़ी वर्ग मिलाने के कारण ब्राम्हणों के चंगुल में फसना; स्कूल और कालेजों में पढ़ने वाले नये बाबुओं की बदचलनी की बातें; जिस्मे तरक्की २ चिल्लाते हुये भी वे नीचे को गिरे जाते हैं; इत्यादि नये समाज वालों का एक विचित्र ही खाका इस्में खींचा गया है–ग्रन्थकार महाशय ने इन सब बातों को पूरी तरह पर उतारने में मालूम होता है अच्छा परिश्रम किया है–ऐसे लोग जो नई सभ्यता के भक्त हैं उनको यह उपन्यास अवश्य पढ़ना चाहिये तथा इस समय के गृहस्थ जिन पर इस पुस्तक में लिखी हुई घटनायें बहुधा आ पड़ती हैं इसे पढ़ अवश्य कुछ न कुछ लाभ उठा सकते हैं–कहीं २ पुस्तक में अश्लीलता तथा Unnatural and Abruptness अधिक आ गया है जिसे आशा है गोस्वामी जी इस पुस्तक के दूसरे संस्करण में शुद्ध कर देंगे–अवकाश पड़ने पर इसकी और अधिक कभी समालोचना कीजाय गी–पुस्तक बहुत ही अच्छी सब के पढ़ने योग्य है–मूल्य चारों भाग का २) है मिलने का पता–श्री किशोरी लाल गोस्वामी ज्ञानवापी-बनारस–

नाट्य संभव।

इस पुस्तक की समालोचना के पूर्व नाटक क्या वस्तु है इस पर बहुत बड़ा लेख लिखा जा सका है किन्तु इस समय उसका अवसर न समझ इतना अवश्य कहने का मन होता है कि जो देश सभ्यता की जितना ही अन्तिम सीमा को पहुंचता है वहां उतना ही अधिक नाटक का प्रचार पाया जाता है–श्रव्य और दृश्य दो प्रकार की कविताओं में कहने की अपेक्षा करके दिखा देने का अधिक असर होता है–खेद का विषय है कि हिन्दी की तरक्की का दम भरने वालों का इस ओर

बहुत कम ध्यान है यही कारण है कि उपन्यास बढ़ते जाते हैं पर नये नाटक बहुत कम लिखे जाते हैं-नाटक लिखने का क्या प्रकार है कितने हमारे हिन्दी लेखक सो जानते भी नहीं-प्रत्येक नगर में दो एक बार हिन्दी के नाटक का अभिनय किया जाय तो देखो साल में कितने नये नाटक तैयार हों-खेद है उर्दू के आशिकी माशूकी वाले तमाशों को देखने में लोगों की बहुत रुचि है जिसका तमाशा दिखलाने वाले हज़ारों रुपये साल में कमा लेते हैं-पर हिन्दी के नाटकों की ओर किसी की रुचि नहीं पाई जाती यह भी हिन्दी का अभाग्य ही है-अस्तु यह पुस्तक भी उक्त गोस्वामी जी की योग्यता का एक उदाहरण है इस पुस्तक के पढ़ने से हम समझते हैं पढ़ने वालों की रुचि नाटक की ओर कुछ न कुछ अवश्य ही होगी-नाटकों में जिन्हें अरुचि है उन्हे चाहिये इसके चतुर्थ अंक में सरस्वती का उपदेश जो भरत मुनि को दिया गया है पढ़ैं-पुस्तक यह अधिकांश बहुत रोचक है मूल्य ।=) पता मिलने का श्री किशोरी लाल गोस्वामी ज्ञानवापी बनारस॥

चीन दर्पण।

इस पुस्तक को लिख गर्ग जी महाशय ने बहुत नाम पैदा किया इस पुस्तक की समालोचना प्रायः सब पत्रों ने किया है इसके सम्बन्ध में अधिक लिखना केवल पिष्ट पेषण मात्र है-इसके पढ़ने से चीन देश तथा वहां के मनुष्यों का रहन सहन आचार विचार आदि दर्पण में मुख देखने के समान प्रगट हो जाता है पुस्तक यह अपने ढंग की अद्वितीय है क्या स्त्री क्या पुरुष सबों के पढ़ने योग्य है मूल्य १।) मिलने का पता महेन्दु लाल गर्ग श्याल कोट॥

वैश्योपकारक।

सच है "गुण न हिरानो गुण गाहक हिराने हैं"-चाहो कोई हो ऊपर को चढ़ना या नीचे गिर जाने की चेतना शक्ति किसी के शरीर से

निकल नहीं भागी किन्तु उस शक्ति को जगा देने वाला कोई अवश्य चाहिये-कलकत्ते के मारवाड़ियों में अब तक व्यवसाय छोड़ और कोई दूसरी बात न देखने में आई—धन्य है उस महा पुरुष को जिसने इनमें चेतना शक्ति जगा दिया और एकदम इनमें विद्या वृद्धि की भी चाट पड़ गई जिसका फल बराबर दिन प्रति दिन विशुद्धानन्द विद्यालय बड़े बाज़ार की लैब्रेरी तथा और २ क्लब और कमेटियों के द्वारा देख रहे हैं-इन्हीं मारवाड़ियों के बीच एक पत्र का होना बहुत ही आवश्यक था सो यह त्रुटि भी इस वैश्योपकारक के द्वारा दूर हो गई-यह मासिक पत्र बहुत ही होनहार मालूम पड़ता है मारवाड़ियों में प्रच-लित कुरीतों की इसमें खूब ही जीट उड़ाई जाती है वेश भूषा इसका बाज़ारू कलाकन्द के समान जैसा मनोहर है वैसे ही इसके लेख की मिठास भी कुछ कम नहीं है-ईश्वर इसे चीरंजीवी रक्खे तो मारवाड़ी भाइयों का जो धन वेश्या थियेटर खेल कूद नाच तमाशों में उठता था वही अब अपनी जाति के उन्नति में व्यय होगा इसका वार्षिक मूल्य १॥) है॥

महादेव प्रसाद भट्ट॥

प्रेरित पत्र।

एडीटर महाशय,

आप यह तो जानते ही हैं कि मिष्टर शुक्राचार्य हमारे पुराने मित्र हैं-उन्हों ने मुझे एक पत्र भेजा है-वह मैं ज्यों का त्यों नीचे लिखे देता हूं-यदि आपको अपने पाठकों पर कुछ दया हो तो उनके हितार्थ छाप दीजिये-

मिष्टर शुक्राचार्य मुझको लिखते हैं:-

"मित्र वर,

आप से मैं अपनी कोई बात छिपा नहीं रखता विशेष कर ऐसी बात जिस से आप लाभ उठा सकें-चार दिन की बात है

कि मैं शहर अबोध नगर की अन्धी गली में घूम रहा था कि एक बड़ा भारी सइन बोर्ड (Sign Board) मुझे एक कोठे के ऊपर देख पड़ा-- उसमें लिखा था—Dr. A. P. Blockhead M. B. F. R. C. S. Edinburgh F. M K. C. S. I. C. London and New york etc.

इन लम्बी चौड़ी उपाधियों को देख मेरे जी में उक्त महाशय के दर्शन की अभिलाषा उत्पन्न हो गई-मैं चट खट २ कर ऊपर चढ़ गया तो सबके पहले जो वस्तु द्वार ही पर मुझे देख पड़ी वह एक मनुष्य के शरीर का पंजर था-पहले तो मैं देखते ही चौंक कर पीछे हट गया परन्तु यह सोच कर कि यह तो डाक्टरों की कार्रवाई का चिन्ह ही है और यही याद दिलाने के लिये द्वार पर रक्खा गया है कि हमारी देहली जिस ने नाघा और हमारे फेर में आया उसका यही हाल होता है मैं साहस कर अन्दर घुसा—अन्दर देखने में आया कि कोट पतलून डटे एक युवा पुरुष एक कुर्सी पर बैठे दो एक शीशी सामने मेज़ पर धरे बैठे हैं और वह एक शीशी के लेबिल को बड़े ध्यान से देख रहे हैं मैं जूता खट खटाता आप के पास तक चला गया परन्तु डाक्टर साहब ने यद्यपि एक कनक्खी से मुझे देख लिया था फिर भी अपने शीशी के ध्यान में लगे रहे मानो बड़े मर्म की बात सोच रहे हों और किसी और बात का ध्यानही न हो—मैं कुछ देर तक तो चुपके खड़ा रहा कि देखें डाक्टर साहब कब आंख उठाते हैं—और वहां कोई कुर्सी भी न थी जिस पर मैं बैठ जाता—निदान यह विचार कि इस भांति का Dumb show कब तक रहेगा मैं बोल उठा "डाक्टर साहब मैं......" इतना कहते ही डाक्टर साहब इस तरह चौंके मानो उन्हें हमारे आने की कुछ ख़बर ही न थी पहले तो आप ने मुझे सिर से पैर तक देखा और कदाचित् यह देख कि मैं फैशन की तौल में उन से झंझी बराबर भी कम न था उठ खड़े हुये और इधर उधर देखने लगे-मैं समझ गया कि यह कुर्सी ढूंढ रहे हैं-डाक्टर साहब को जब कुछ देख न पड़ा तो

कुछ सिटपिटाये से मालूम पड़े-मैं यह देख चट टेबिल पर बैठ गया और बात छेड़ दिया-डाक्टर भी कुर्सी पर बैठ गये और हमे ऐसा जान पड़ा मानो बड़ा भारी बोझ उनके सर से उतर गया-मैने पूछा "क्या डाक्टर ब्लाकहेड आपही हैं ?"

डाक्टर–वेल ! यस ! जी हां मैंही हैं–आप का कूछ काम–

मैं-क्या आप ने बिलायत में डाक्टरी सीखा है ?

डा०—हम बिलायट बहूत दिन रहा पर सीखना पाड़ना कैसा–हम अक्कल का ज़ोर से डाक्टरी करता–सीखता बेवकूफ लोग–

मैं–तो क्या जितने लोग बर्षों सिर पचा कर पढ़ते हैं और मेहनत करते हैं सब बेवकूफ हैं ?

डा०–आलबट–जो अक्कल रखटा उसको सीखना क्या काम–दुनिया में कोई बीमारी नहीं जो हम अकल का ज़ोर से नहीं आराम करने सकता हमारा नूसखा किसी को शूझने नहीं शकटा ॥

मैं-क्यों डाक्टर साहब जब आपने पढ़ा नहीं तो आपने M. B. F. R C. S. इत्यादि उपाधियां कहाँ पा लीं ॥

डा०–(बड़े ज़ोर से हंस कर) ओह हाः ! हाः !! हाः !!! आप कूश नहीं शमझटा–यह सब दिखलाने का ब्राट–हमारा काम का नेइ–लेकीन जैसे हम बहुत चीज़ दिखलाने को खरीदा यह भी खरीद लिया जिनमें नाम में लगा रहे ओ हो हो हो अब आप समझा––यह सब कूश बात नहीं ! हमारा अकल साब कूश— आप कोई बिमारी बटावैं हम अभी नूशखा लिखटा–देखिये हम कैसा२ बीमारी अच्छा करटा ॥

यह कह कर उन्हों ने टेबिल के दराज़ से एक काग़ज़ निकाल कर मुझे दिया–यह डाक्टर साहब का Advertisement था–इसमें आप की बड़ी २ प्रसंशायें लिखी थीं–इसमें एक बात यह भी लिखी थी–कि Dr. A. P. Blackhead *ORIGINAL* Doctor हैं–आप आयुर वेदिक यूनानी

और विलायती ढंग सबही कुछ जानते हैं—और आपने आज तक ६००० रोगियों को अच्छा किया है—यह पढ़ मैं बोला "क्यों डाक्टर साहब आपने ६००० रोगियों को अच्छा किया है"?

डाक्टर बोले अलबट—यह कह आपने एक किताब निकाली जिसमें बहुत से पुरुष और स्त्रियों के नाम थे—मैंने पूछा "क्यों साहब आपने इतनों का इलाज किया है या इतनों को अच्छा किया है?"

डा०—वो एक ही बाट हमारे यहाँ जो आया वह आप ही अच्छा हो जाटा—आप अपना नाम बताइये हम लिखें ॥

मैं—मेरा नाम तो मिष्टर शुक्राचार्य है परन्तु क्यों साहब आपने तो मेरा इलाज किया नहीं जो मेरा नाम लिखते हैं ॥

डा०—(रजिष्टर में मेरा नाम लिख कर) ओह हमारा यहां आप आया है तो ज़रूर कूछ बीमारी होगा और हम अच्छा कर देगा—और जो बीमार न हुआ तो भी हमारे यहां से अच्छा हो जायगा ॥

मैंने यह सोचा कि अब डाक्टर साहब का इम्तिहान लेना चाहिये—यह विचार मैं बोला—"डाक्टर साहब आपने कहा कि मैं हर तरह की बीमारी दूर करता हूं मुझे इश्क की बीमारी है आप इसकी क्या दवा बतलाते हैं"

डाक्टर साहब सर पर हाथ धर सोचने लगे और थोड़ी देर बाद एक काग़ज़ पर कुछ लिखने लगे और बोले अच्छा मैं आप के वास्ते नुशखा लिखता आप इससे अलबट अच्छा हो जायगा—उन्हों ने काग़ज़ मुझे दे दिया उसकी नकल मैं नीचे देता हूं;

℞ वास्ते मिष्टर शुक्राचार्य।

इश्क़ का नुशख़ा।

घृणा	......	......	......	......	८ औंस
दृढ़ प्रतिज्ञा	......	......	......	......	८ पौंड
बुद्ध	......	......	......	......	२ ग्रेन
धैर्य	......	......	......	......	२ पौण्ड
तज़ुरबा	......	......	......	......	२ औंस

इन सब द्रव्यों को बीस पौण्ड जीवट का पानी में मिला कर उसमें २ पौण्ड लापरवाही का मिश्री डालकर, बदचलनी का आंच का जोश दो- आधी रात के वख़त रोज़ उसका ३ औंस के हिसाब से सेवन करो साल भर में बीमारी दूर हो जायगा॥

यह कुल दवाइयाँ अबोध नगर मोहल्ला अन्धी गली Dr Blockhead के यहां मिल सकती है"

मैं इसको ले बिदा हुआ और यह सोच कि कदाचित आप इससे इश्क बाज़ नये जवानों के इश्क की बीमारी के लिये कुछ भला कर सकें आप के पास भेजता हूं-

आप का पुराना मित्र शुक्राचार्य"

A. S.

बड़ों की भूल को कौन कहै।

नागरी प्रचारणी सभा तथा उसके संचालक महोदय गण बड़े बुद्धिमान् लोग हैं अपनी बुद्धि वैभव से वाचस्पति को भी दबाने का दावा बांधने वाले हैं-दत्त कृत हिन्दुस्तान का इतिहास के अनुवाद करने में न जानिये क्या उपकार समझे हुये हैं कि प्रयाग समाचार के इतना धूल उड़ाने पर भी उसके अनुवाद में कटि बद्ध हैं-सच तो है अङ्गरेज़ी भाषा इस समय कल्प वृक्ष के समान है जिस्में प्रत्येक विषय के अनोखे से अनोखे ग्रन्थ मौजूद हैं अनुवाद करने की श्रद्धा चर्राई है तो उन ग्रन्थों का अनुवाद क्यों न किया जाय किन्तु बात उसमें यह है कि उन पुस्तकों के अनुवाद से हिन्दू जाति की पुरानी रीति नीति तथा वैदिक समय के महात्मा ऋषियों की पोल नहीं खुल सकती-विलायत के लेखक तो हमारी प्राचीनता तथा हमारे प्राचीन समय की सभ्यता और साधु भाव न सह अनेक आक्षेप करते ही थे अब इस देश के लोग भी जिनमें हिन्दू बाप मा का रक्त और वीर्य बराबर दौड़ता आया है वे भी हमारे प्राचीन समय के बड़प्पन को नहीं

देख सकते–ये दत्त महाशय तथा उनके लेख पर श्रद्धा रखने वाले अनुवादक गण उसी कोटि के मनुष्य हैं दत्त कृत इतिहास के अनुवाद से इस प्रयोजन की सिद्धि भरपूर होती है–अस्तु यदि पुण्य श्लोक उन ऋषियों में सच्चा तपोबल था और उनके चलाये वैदिक धर्म में कहीं से स्वार्थ का लेश नहीं है तो एक नहीं सौ ऐसे इतिहास लिखे जांय हमारे प्राचीन ऋषियों का गौरव किसी तरह कम नहीं हो सकता–दूसरे यह कि इस अनुवादक मण्डली का आन्तरिक भाव हमारे हिन्दू धर्म के प्रति कैसा है सो भी प्रगट हो गया–

लोकोक्ति।

कखरी लड़का गांव अन्दोर–"अङ्के कृत्वा तनय ममलं ग्राममन्वेषते हि–

नोन का बेचने वाला कपूर का मोल क्या जानै–विक्रेता लवणस्य वेत्ति किमुतत्कर्पूर मूल्यं परम्–

दीपक हांथ में लिये कुये में गिरते हैं–दीपं गृहीत्वा हि पतन्ति कूपे॥

"मायान्धकारं तरितुं प्रदीपं वेदान्तविज्ञानमपि प्रपन्नाः।
कुर्वन्त्यहो कर्मजुगुप्सितं च दीपं गृहीत्वा हि पतन्ति कूपे"॥

अज्ञान जनित अन्धकार के पार होने को वेदान्त में कहे सिद्धान्त को पा गये हैं फिर भी निन्दित कर्म से नहीं मुंह मोरते वैसा ही जैसा कोई हांथ में दिया लिये भी कुआं में गिरता हो–

बाढ़ का पानी निकल गया तब सेत बांधने से क्या–"गताम्भसः किं करणेन सेतोः"–

एक साथ हज़ार सूर्य उगैं तब भी अन्धा क्या देख सकेगा–"संभूयापि सहस्रमयरमणिं पश्येयुरन्धाः कथम्"–

कुत्ते के साथ मैत्री का दोही परिणाम है देह चाटैगा या काट खायगा—सख्ये कृते सहशुना लिलिहेद्दशेद्वा,,—

"खलाः प्रकृतैव खलाभवन्ति विप्राभवद्‌भिर्विहितोपदेशाः ।
अथार्जवंनैवकदापियान्तिपुच्छंशुनःकिंन्वृजुतांभजेत ॥

खल को कितना ही उपदेश करो वह अपनी खलता नहीं छोड़ता कुत्ते की पूछ को कितना ही सीधा करो अन्त टेढ़ी की टेढ़ी—

"व्याघ्रः क्षुधितोपि न भक्षयेत्तृणम्" बाघ कितना ही भूखा हो तिनका खा कर नहीं जीता--

"वृत्यादिकर्शितोपि विद्धान्मान्यः स्वदेहपात्रायाम् ।
नसहेत हयवमानं व्याघ्रः क्षुधितो पि न भक्षयत्तृणम् ॥

पढ़ा लिखा जीविका के न मिलने से अपने नित्य के भोजन निमित्त अपमान नहीं सहता शेर भूखा हो कर भी क्या तिनका खा कर जियेगा--

दधिकन्दो का मेला ।

कन्धैया जी के जन्म का आज दूसरा दिन दहकन्दो हैं दिन भर के व्रत के उपरान्त रात को सिंघाड़े की पूरी और अरुई खाने से पेट फूल ऐसा लम्बोदरायमान् हो गया कि उभड़२ के सांस दिला रहा है रात का खाया हुआ सब सामान पेट में काठ का गोलासा गड़ता हुआ किसी तरह चैन नहीं लेने देता—मन में विचार उठा कुछ थोड़ा टहल इसे पचा डालें एक पन्थ दो काज अन्न भी पच जायगा और सैर तमाशा भी हो जायगा--बस घर से चल खड़ा हुआ मील दो मील का वाक मुंह बांधे आना जाना अच्छा न मालूम पड़ा तो क्या करना चाहिये याद आई अपने Permanent दादा गुरू पंच जी को साथ लेलें हम उनके घर जा कुंढी खट खटाय कुम्भकरण कि नींद से उन्हे विमुक्त कर साथ ले चल खड़े हुये और चेहल कदमी ख़तम होने पर सरे बाज़ार आ निकले देखा तो घंटा घड़ियाली बजाते दहकन्दो मनाये जै कन्हैया लाल चिल्लाते लोग जा रहे हैं--पंच जी जंगल के आये हूस के समान

यह सब कौतुक देख मुझ से पूछ बैठे—Nonesense यह क्या भांय बांय भांय कहते हुये चिल्ला रहे हैं कान की चैली उड़ाये डालते हैं किन गन्दे बद तमीज़ गवारों के बीच मुझे ला पटका—

मैंने कहा आप भी क्या ही हूस हैं हर साल इसे देखते हो फिर भी भूल जाते हो नहीं जानते आज दहकन्दो है—

पं-क्या यह दहकन्दो है तो ये सब लोग क्या गुल शोर मचाये हुए हैं-Nonesense दधकान्दो क्या बला है—

मैंने कहा यह कन्धैया जी के जन्म का उत्सव आज का बड़ा पुनीत दिन है आप भी इन्हीं लोगों में मिल उत्सव मनायें और आज तो दोगड्ढम उत्सव मनाना चाहिये इसलिये कि आप के हिन्दी प्रदीप का दूसरा सहयोगी राघवेन्द्र हमारे नगर में जन्मा हैं॥

पं-एं-एं-यह राघवेन्द्र किसके घर जन्मा है?

तुम जान बूझ सिर खपाये डालते हो यह किसी का लड़का नहीं है नहीं जानते यह बीसवीं सदी तरक्की का ज़माना है गला फाड़ २ लोग तरक्की २ चिल्लाया करते हैं चाहो किसी जाति मत या समाज के हों सभी अपने २ को आज़ाद हैं—उन्ही में कोई २ पुराने ख़याल वालों ने एक दूसरे तरह कि तरक्की चाहते हुये इसके जन्म दाता हुये हैं उसी की आनन्द बधाई में बोलो "नन्द के आनन्द भये जै कंधैया लाल की"

पं-उः कितने जन्मे और जन्मैंगे जब जाने इस खबीस की उमर तक पहुंचे खैर यहां तो कुछ दिल बहलाव चाहिये—चलो अपने चेलों को इकट्ठे करैं तब सब सामान पूरा २ घटै—

निदान चतुर सयाने ऐरे गैरे पच कल्यान सबों को इकट्ठे कर पंच जी दहकन्दों का पूरा स्वाँग निकाल अपनी पंच उपाधि को चरितार्थ करने लगे-मैं भी As a reporter संवादक हि० प्र० को आ जाताया आप जानते ही हो एडिटरों के पेट में बात कहां पच सकती है आप ही तो डाला—

नन्द के आनन्द भये जै कंधैया लाल की-

करम धरम कहं खोय बहाओ। खुले खज़ाने होटल जाओ॥
गोरों का सा भेख बनाओ। होटल में टोटल चुकताओ॥ जै कंधैया०॥
बुट सरे बाज़ार चबाओ। घर का धान पवार मिलाओ॥
नए सभ्य न्यूमाटी गाओ। छल करि टूथ २ चिल्लाओ॥ जै कं०॥
धर्म कर्म का तत्व बताओ। थाती धरी हज़म करि जाओ॥
नई रोशनी की पहिचान बताओ! टेबिल पर खाना चुनवाओ॥ जै कं०॥
धरम के नाते चन्दा लाओ। उसे हकर कमिशन बताओ॥
नागरी को लौंडी समझाओ। बी उर्दू सेवा निज फ़र्ज़ जताओ॥ जै कं०॥
भाई २ नित उठ लरिये॥ मात पिता को लातन मरिये॥
पत्नी की आज्ञा अनुसरिये। उठतेहि भोर चरण रज धरिये॥ जै कं०॥
हिन्दू भाइन से ऐंठे रहिये। साहबन की नित ठोकर सहिये॥
फ़ेशन के चाकर बन जैइये। पुण्य पाठ ए बी सी जपिये॥ जै कंधै०॥
हौस टैक्स घर २ लगवैये। ता पर पानी टिक्कस रखिये॥
रूस जपानी मूमन धाये। जापानी तेहि खूब छकाये॥ जै कंधैया०॥
पत्रों के ग्राहक बन जैये। वेल्यू आवे तब लौटैये॥
बहुत हुआ साहब चुप रहिये। इन झगड़ों से क्या मिल जइये॥ जै०॥

M. P. भट्ट

ज़रूरत है।

गौरी पाठशाला के लिये एक गुरुआनी की ज़रूरत है जो हिन्दी लिखना पढ़ना, व हिसाब में त्रैराशिक तक, इतिहास, भूगोल और सूईकारी सिखला सकती हो वेतन योग्यतानुसार दी जायगी प्रार्थना पत्र सम्पादक के नाम से आना चाहिये॥

पता सम्पादक-हिन्दी प्रदीप अहियापूर
इलाहाबाद

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहि टरै ॥
सूझै बिबेक बिचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २६ }
सं० ८-९-१० } **प्रयाग** { अगस्त, सितंबर, अक्तूबर
सन् १९०४ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार
पं० रघुनाथ सहांय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥≡)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) ——०*०—— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज १=)

——:००:——



हिन्दीप्रदीप

जि० २६ } प्रयाग { अगस्त, सितंबर, अक्तूबर
सं० ८-९-१० } { सन् १९०४ ई०

चढ़ती जवानी की उमंग ॥

समय राज का यह दोष कि कभी एक सा न रहा लख्य करने लायक है वाल या पौगण्ड तब कैशोर फिर युवा युवा से अधेड़ उपरान्त बुढ़ापा जीव मात्र के साथ लगा रहता है-सर्जित पदार्थ मात्र के साथ यह अदल बदल चला ही जाता है; नामी से नामी वैज्ञानिक दार्शनिक डाक्टर वैद्य या हकीम तथा और २ आमिल काविल जो अपने २ फन या हुनर का दावा रखते हैं उनकी भी इस अदल बदल के दूर करने में एक नहीं चलती-एक वह समय था जब हम भी नव प्रसूत सद्यः प्रस्फुटित कुसुम सदृश तारुण्य संपन्न जवानी के जोश

में भरे मदमाते हो रुश्तम को भी कुछ माल नहीं समझते थे; संसार सब भुनगा समझ पड़ता था; साहस और उद्योग में एकता थे-अपने रूप माधुरी और सौन्दर्य में रूप राशि अश्विनी कुमार तथा कामदेव से अपनी तुलना करते थे-उत्साह और हौसिला तथा नई २ उमंगों के आगे बड़े से बड़े काम तुच्छ और हलके जंचते थे-मन होता था कि कोई ऐसी मेगनाटिक पवर हासिल करें या कोई ऐसा वाष्पीय यंत्र या विद्युत् शक्ति ईजाद करें कि आस्मान के सातवें तबक में तैरते फिरैं-अथवा वेगगामी विष्णु भगवान् के वाहन गरुड़ का पर नोच खसोट अपने में लगा लें कि ऊचे से ऊंचा सत्य लोक पर्यन्त जा घूम आवें अथवा कोई ऐसा वर्मा निकालें कि अतल वितल सुतल तलातल पाताल पर्यन्त उस्से छेद डालें अर्जुन ने भीष्म को बाण गंगा का जल पिलाया था सो तो सब कथानक और पोथी का भांटा मात्र रहा हम कर के दिखा दें-एक लात मारैं तो समस्त भूमण्डल कांप उठे ज़ल ज़ला छा जाय दिशाओं के अन्त में दिग्गज चिल्ला उठैं-ज़रारी सरांगी में वीराग्रगण्य जापानी जो इन दिनों वीरता का नमूना दिखलाने में सबों को अपने नीचे किये हैं उनके भी छक्के छुटा दें हिकमत में अरस्तू और लुकमान को भी कहो कुआं झकावें-हमारी वक्तृता के आगे वाचस्पति रद्द हुई हैं डिमास्थानीज़ और सिसिरो भी रहते तो शरमा जाते तब इन दिनों के छोट भइये केशव सेन सुरेन्द्रनाथ दादाभाई एनीबिसेंट ग्लाडस्टन मिस्टर मालवी प्रभृति किस गिनती में हैं-किसी व्यवसाय की ओर झुक पड़ैं तो "किंदूरं व्यवसायिनाम्" को लिखने वाले को सिद्ध कर दिखावैं कि देखो व्यवसाय और उद्यम इसे कहते हैं-यूरोप और अमरिका तो मानो घर आंगन था पुराणों के सात द्वीप नौ खण्ड या यों कहिये पूर्वी और पश्चिमी गोलार्द्ध Eastern and Western Heme Sphere दोनों को छान उनका सत्त निकाल लें या यों कहिये अपनी वाणिज्य की योग्यता Trading capacity को लेई सा पकाय दोनों गोलार्द्धों को एक में चिपका दें-हमारी पहल-

वानी के आगे रुश्तम का कोई रुतबा न रहा सच है—"मक्खी का भुजदण्ड उखाड़ूं तोड़ूं कच्चा सूत—घूंघन मार बताशा फोड़ूं हूं मैं बड़ा मज़बूत"—उदारता में हमें कलियुग का करन कहना कोई अत्युक्ति नहीं है—"चमड़ी जाय दमड़ी न जाय"—भी हमारे लिये बहुत ही सुघटित है—हमे अपनी जवानी का जोश यही बतला रहा था कि किफायत करना बड़ी चीज़ है किसी को और २ हौसिले होते हैं हमे अपनी नई उमंग में रुपया जमा करने का भूत चढ़ा था—रूखे सूखे अन्न से किसी तरह झोंक समान इस उदर को भर लेते थे पर रुपया जोड़ते गये औरों को किसी दूसरी बात में नाम पैदा करने की रुचि होती है हमको बद्धमुष्टि बज्र कृपिणता में नाम कमाने का शौक था—सूरत देखना कैसा भोर को उठते हमारा नाम किसी की ज़बान पर आ जाय तो लोग कानों में उंगलिया देने लगते थे और सोचते पछताते थे कि न जानिये आज का दिन कैसा कटै—कांइया पन और सुमाई के फन में कलकत्ते की बड़ी बाज़ार के माड़वारी भी हमे मान गये—हमारा महा मलिन आकार और कमीफ मैले कुचैले कपड़ों को देख लोग यही अनुमान करते होंगे कि यह कोई अत्यन्त निष्किंचन परम दरिद्र होगा यह किसी को क्या मालूम कि कारूं का ख़ज़ाना हमी अपने नीचे गाड़े बैठे हुये हैं या कुबेर की संपति हमारे ही पास गिरों है—

"दृढ़तरनिबद्धमुष्टेः कोषनिषण्णस्य महामलिनस्य।
कृपणस्य कृपाणस्यच केवलमाकारतो भेदः॥

अस्तु ईमानदारी और उदार भाव को काली के खप्पर में झोंक इस भांति रुपया जोड़ यम राज की पहुनाई के लिये हम सिधार गये दोही एक पुश्त के उपरान्त हमारे वंशधरों में ऐसे हुये जिन्हे युवा अवस्था आने पर जोश रुपया फूकने का सवार हुआ—तमाशबीनी और शराब खारी का शौक चर्राया मटियाबुर्ज़ के नौवाब बनने का

हौसिला हुआ मीर शिकारों को काठ का उल्लू हांथ लगा भांड़ भगतिये खुशामदी टट्टुओं की बन पड़ी चुटकी बजा बजा लगे भालू सा उसे नचाने "भइया साहब आप इन दिनों अमीरी और रियासत में शहर की नाक हैं"-एक दूसरा आय झुक के सलाम के बाद "हुज़ूर नौवाब साहब के खोजासरा ने आप के लिये तुहफे भेजे हैं" दूसरा-"हां भैया कहत तो ठीक बटले-"भैया साहब फूल कर कुप्पा सा हो गये इनाम इकराम में लगे रुपया दोनों हांथ उलचने-इस बात के जोश में भरे हुये हैं कि हमारे बराबर का अमीर दूसरा कोई न सुनने में आवे-बरस ही छ महीने में कदर्य बाबा की कमाई जिसे उसने आधा पेट खाय न जानिये कौन २ सा अन्याय और दुराचार से इकट्ठा किया था खोय बहाय साफ कर डाला-कृपण का धन जिस ढंग से आया था उसी ढंग पर चला गया सच है-

"यदि नात्मनि पुत्रेषु नच पुत्रेषु नप्तृषु।
नत्वेवं चरितो धर्मः कर्तुर्भवति नान्यथा"॥

पुण्य या पाप कर्म जो मनुष्य से बन पड़ता है पहिले तो उसी पाप या पुण्य करने वाले पर आता है कदाचित् किसी कारण उसपर न आया तो उसके पुत्र पर आ उतरता है-पुत्र पर भी न आया तो, नाती या पोतों पर तो अवश्य ही आता है कभी व्यर्थ जाता ही नहीं-इसी से पुराने लोगों की यह कहावत है "बाढ़ौ पुत्र पिता के धर्मे" समझदार शान्त शील सुकृती पिता भी अनेक क्लेश और संकट सहते कुपथ से बचते फूंक २ कर पांव धरते हैं जिसमें उनके सन्तान पर उनके सुकृत का फल आ उतरे और वे फलैं फूलैं-तात्पर्य यह कि चढ़ती उमर नई जवानी का जोश अद्भुत होता है जिसका कुछ थोड़ा सा कई एक ढंग का चित्र हमने यहां पर खींच कर कई तरह के दृश्यों में दिखाया है-मनुष्य के जीवन में यह वह वयक्रम है जो तमाम ज़िन्दगी भर के बनने बिगड़ने की बीजारोपणस्थली है-

इसी से कहा भी है "जो ना हुै है बीस पचीसा सो का हुै है तीसा"—यह वह समय जिसमें मनुष्य के जीवन में होनहार शुभ अशुभ परिणाम का अंकुर पैदा होता है; जब इन्द्रियां सब अविकल रहती हैं दिन प्रतिदिन मानसिक शक्तियों का प्रकाश बढ़ता ही जाता है; जीवन की अनेक ऊची नीची दशा नहीं झेले रहते इससे उनके अनुभव में कचाहट रहती है जिससे उनका विचार बहुधा दोष दूषित रहता है ४० के ऊपर पहुंचते २ यह दोष भी निकल जाता है और सब तरह पूर्णता आ जाती है—काम करने का यही समय है इसलिये कि अब इनकी हर एक बात में गुरुता विचार शक्ति Decision में पुष्टता आ जाती है चरित्र दूषित होने का खटका भी जाता रहता है—जिसने इस समय को खो दिया अपने लिये तथा समाज के लिये कोई ऐसी बात न कर गुज़ारा जिससे प्रकृति के बड़े रोज़नामचे में उसका नाम दर्ज किया जा सके उस पुरुष का जीवन व्यर्थ है—उसने मानो अपने ही को ठगा आगे चल उससे कोई काम काहे को बन पड़ेगा क्योंकि उपरान्त आगे बढ़न की कौन आशा रही जब कि शारीरिकबल मानसिकशक्ति पौरुषेय गुणों में नित्य घटावही होता जाता है—सच पूछो तो जो कुछ करने का समय है और जिन्हों ने कुछ किया है वे इसी तीस पैतीस से पैतालीस के बीच—इन दिनों जब कि ४१ से ५० तक में जीवन की परमावधि है औसत निकाला जाय तो १०० में ७५ के लगभग इसी उमर में प्रयाण कर जाते होंगे—बाल्य बिवाह कायम रहै देखिये आगे चल ३० या ३५ अथवा ४० ही परमायु रहजायगी—इसी उमर को अधेड़ कहेंगे जब लोग ९० और १०० तक पहुंचते थे तब ४० या ४५ ठीक २ उसका आधा हुआ इस समय जवानी की उमंग बलवीर्य पुरुषार्थ सब बना रहता है चढ़ती उमर का छिछोर पन भी अब तक सिमिट आता है—चरित्र में गुरुता विचार में स्थिरता शालीनता या बुर्दबारी शील संकोच

बड़ों के साथ उनका बड़प्पन का बर्ताव छोटों की छोटाई का खयाल भरपूर आ जाता है-समाज में लोग भी उसे मानने और इज्ज़त देने लगते हैं यदि वह शुद्ध चरित्र का है तो उसकी सब बातों पर ज़ोर आ जाता है विशेष क्या कहैं हम तो समझते हैं कि २० या २२ तक की उमर का पढ़ा लिखा और ४० से ५० तक का अपढ़ दोनों समझ में एक से हैं-वल्कि लौकिक व्यवहार में पहिले की आपेक्षा दूसरा अधिक परिपक्क बुद्धि का होगा-खेद है कि हमारे यहां के जल वायु में चिरकाल से सहानुभूति और आत्म त्याग Sympathy and self Sacrifice का बीज बहुत दिनों से चला गया है ईश्वर करै जल्द ये दोनों यहां के जलवायु में कदाचित् आ जांय तो निश्चय है ये लोग हमारे बड़े उपकार के हों-नई उमंग वालों में बहुधा ये दोनों गुण पाये जाते भी हैं तो ४० या ५० तक पहुंचते २ विल्कुल बुझ जाते हैं इस उमर तक टटके बने रहैं तो भारत के उत्थान में फिर बिलम्ब न रह जाय-वाचक वृन्द यह क्षुद्र लेख इस समय हमारी लेखिनी का समझ उठ आया सो निवेदन किया इसमें बहुत सी त्रुटियां भी होंगी उसपर ध्यान न दें यदि इसमें कोई गुण हो और कोई अच्छी शिक्षा निकलती हो तो उस त्रुटि को आप भूल जांयगे-

——

प्रान जांय पर शान में फर्क न आवै।

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः-भारविः

जलती हुई आग में पांव रखने का कोई साहस नहीं करता राख के ढेर को सब पांव से कुचलते हैं-आन शान वाले सुख पूर्वक जीने से हांथ धो बैठते हैं पर अपने शान में फर्क नहीं आने देते-सच है अपनी प्रतिष्ठा रोब या शान गवांय लतमरुआ गर्दखोर गुलाम बन

जाये ही तो क्या-जापानी वीर इसी से रूसियों के मुकाबिले झुण्ड के झुण्ड हज़ारों कटे मरते हैं और युद्ध से पराङ्मुख नही होते-धन्य है उनकी वीर प्रसविनी माताओं को जिन्हों ने ऐसे रणबांकुरे पुत्रों को अपने गर्भ में धारण किये हैं-स्वच्छन्दताप्रिय जापानी संसार के तुच्छ सुखों को लात मारे हुये हैं-यह वह कौम है जहां सिंह ही जन्मते हैं पृथ्वी के भार भूत कूकर सूकर वहां एक भी नहीं पैदा होते-प्राण पण की बाज़ी तो बड़ी कड़ी है ऐसा साहस धारण करना साधारण बात नहीं है ओछी बुद्धि ओछी समझ वाले स्वार्थ लम्पट आत्म सुखरत एक कणिका के लिये भी मान और प्रतिष्ठा को खो बहाना कुछ नहीं मानते बेटा बाप के मुकाबिले स्त्री अपने पति के विरुद्ध अपना सुख अपना आराम मुख्य समझती है; Degradation ज़िल्लत या अपकर्ष की यह मानि हानि पहली सीढ़ी है; जिस जाति या जिस पुरुष में मानि हानि का धक्का नहीं लगता न मन में इसका कुछ असर होता है वह अज्ञ मूढ़ गुलामी को कष्ट मानता ही नहीं वरन उसके लिये गुलामी या पराधीनता ही साम्राज्य सुख है-सुशिक्षित समझदार को जिसकी असह्य वेदना मानसी व्यथा पैदा करते हुये प्रतिक्षण पीड़ा और सन्ताप बढ़ा रही है-फूट की वेल हरी हो फबक के फैलने के लिये यह ज़िल्लत वह थाबला है जहां से इसका अंकुर निकल जड़ पकड़ लेता है हज़ार चेष्टा लोग किया करते हैं किन्तु यह फूट की बेल निर्मूल किसी भांत नहीं होती-पराधीनता और गुलामी की ज़िल्लत उठाते २ जातीयता वृक्ष निर्ज़ीव हो यहां तक मुरझा जाता है कि जोश या सरगरमी कहीं किसी अंश में नहीं रह जाती जो सरगरमी कौमियत आने के लिये बड़े फाइदे की थी वही हर तरह पर Degradation अधः पात और कमज़ोरी के बढ़ने में सहायक होती है यहां तक कि लोग अपनी वर्तमान पतित दशा को धर्म मानने लगते हैं और ज़रा भी उससे अलग होना बाप दादा के

लीक के बाहर होना मानते हैं-आन शान का पूरा सहकारी स्वत्वाभिमान जातीयता को न प्राय उदासीन भाव धारण कर विदा हो द्वीप द्वीपान्तरों की सैर करने को चला गया जब अपना देश अपनी जाति अपना धर्म अपनी रीति नीति आदि में अपना पन कहीं नहीं रहा भातृ भाव और स्नेह का उच्छेद हो गया सहानुभूति नाम को न रही तो स्वार्थ परता आ समाती है आपस का विद्रोह मद मात्सर्य डाह कुटिलाई इत्यादि जितने संकीर्ण भाव हैं सबों की बन पड़ी जिनका विस्तार यहां तक हो गया कि ऊंचे खयाल तथा उदार भाव की एक बात भी नहीं बच रही-जो सौहार्द और सहानुभूति समस्त देश और जाति के साथ पहले रही वह यहां तक संकुचित हो गई कि भाई भाई में नहीं रही परिणाम जिसका यही हुआ कि इन्में इतनी दुर्वलता और क्षीणता छाय गयी की अपनी हर एक बात के लिये एक तीसरे का इन्हे मुह जोहना पड़ा-अपने आप कुछ कर गुज़रने की बुद्धि का लोप हो गया. चित्त के दुर्व्वल होने से आगे बढ़ने का साहस ही नहीं रह गया-यह सब क्यों हुआ उसी एक स्वत्वाभिमान जिसे हम आन शान कहैंगे न रहने से जिसे जीवन का सार कहना चाहिये जैसा जान निकल जाने से यह मृतक देह काष्ट लोष्ट सम किसी काम का नहीं रहता माघ कवि ने कहा भी है-

पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति ।
स्वस्था एवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥

धूलि जो पावों से आगे को उड़ाई जाय तो लौट कर अपने ही सिर पर आ चढ़ती है तब देह धारी को अपमान सह कर भी आन न आवे तो उस देह धारी से पांव की धूल अच्छी जो निज अपमान का प्रतीकार विना किये नहीं रहती-आन आवेगी भी तो परस्पर दो समान जातीय के मुकाविले; उसमें यही होता है कि परस्पर दोनों में इतनी

में इतनी गाढ़ी शत्रुता हो जाती है कि एक दूसरे के लहू के प्यासे हो जाते हैं तीसरे विजातीय के सामने हम तुम दोनों आन खो बैठते हैं और दबक कर तवास्मि तवास्मि कह वशम्वद हो जाते हैं-इसे आन नहीं कहेंगे वरन यह मानसिक दुर्बलता को प्रगट करने वाली भ्रातृभाव की मूलोच्छेद करने हारी कुल्हाड़ी ईर्ष्या है-जिसके होते ही साधारण रीति पर अपनी समस्त जाति की तरक्की का भाव फिर रही नहीं जाता तो निश्चय हुआ कि यह स्वत्वाभिमान देश या जाति की उन्नति की पहिली सीढ़ी है जिस भूमि पर ईश्वर का अनुग्रह होता है वहां के निवासियों में स्वत्वाभिमान पहले आता है जापान वालों में जिसका पूर्ण प्रादुर्भाव है-

---

अब कब चेंतोगे ?

भाइयो! हम लोग अन्धकार में पड़े बहुत दिनो से उनीन्दे से हो रहे हैं उचित है कि अब उस निद्रा का विसर्जन कर आखें मींच कर देखें कि कराल काल ने हम लोगों को सोते हुये पा कर सब ओर कैसे २ उत्पात मचा दिये हैं और हम सबों की कैसी दुर्दशा कर रक्खी है—भारत अधिकांश अपने सन्तानों को विद्या से विमुख पौरुषेय गुण विहीन देश और जाति दोनों को क्षति ग्रस्त करने वाली प्रथा और कुरीतों में लिप्त देख विकल हो रहा है कोई ऐसा भव्य भाग्यवान् ढाढ़स देने वाला नहीं देख पड़ता जो इसे करावलम्ब देने को अग्रसर बनने का साहस करता-भाइयो! एक बार हिम्मत बांध उठ खड़े हो यदि अपने काम में कृतकार्य न हो तब भी उत्साह पूर्वक यत्न करने से पीछे न हटो—"सोत्साहस्यहि लोकेस्मिन्नकिंचिदपि दुष्करम्" ज़रा सोचो तो आज से ४० या ५० वर्ष पहले जापान क्या था उसे भी आप ही के समान दुर्ग्रह पीड़ित किये थे वही अब जापान के बीर पुत्रों ने अपनी जन्मभूमि के सुधारने और उसे तरक्की के ऊंचे शिखर पर चढ़ाने का प्रण कर कमर बांध मुस्तैद

हो गये-जिस्का परिणाम यह हुआ कि शिल्प वाणिज्य की तरक्की तो उनके लिये छोटी सी बात हो गई बरन इस समय जापानी लोग वीराग्रगण्य हो रूस ऐसे विकराल भालू से टक्कर ले रहे हैं और संसार भर को अपने वीर्य वैभव से चकित कर रहे हैं—तनिक सोचो तो उत्साह और दृढ़ता युक्त साहस का फल कैसा मीठा है—अर्जुन यदि किरात रूप शिव से युद्ध में अस्त्र शस्त्र के नाश हो जाने पर भी न हटे रहते तो उन्हे वे दिव्यास्त्र कभी मिल सक्ते थे जिन अस्त्रों के भरोसे अर्जुन भीष्म द्रोण करण ऐसे महा रथियों से लड़े और उन्हे जीता—इसी तरह यदि हम लोग भी जो अविद्या नासमझी और आपस की फूट आदि अनेक शत्रुओं से घिरे हुये हैं उत्साह और साहस के साथ इन्हीं शत्रुओं का मुकाबिला करने को उद्यत हो जांय तो कभी संभव है कि कृतकार्य न हों-जापान की वर्तमान उन्नति देख कर भी हम लोग उससे शिक्षा न लें तो निश्चय हमारे भाग्य में चाकरी करना ही लिखा है—दुष्ट ग्रहों की भांत हैं तो हम लोगों में अनेक त्रुटियां किन्तु उन्में दो चार तो ऐसी हैं जिनके निवारण की यदि जल्द उपाय न की गई तो हम में और असभ्य जंगलियों में बहुत कम अन्तर रह जायगा-सब के ऊपर मूर्खता है तिमिर सा जो हमारे नेत्रों को मूंदे हुये है जिस्से हमारे चारो ओर क्या हो रहा है कुछ नहीं देख सक्ते उस्से हमारा गला छूटना उचित है—अंगरेज़ी की शिक्षा का असर इस अन्धकार को दूर बहाने का सर्व साधारण में बहुत ही कम हुआ है जिन्मे हुआ भी वह कुछ ऐसा उलटा असर पड़ा कि जिस्से उपकार के बदले अपकार ही विशेष देखने में आता है-दूसरी बात सहानुभूति है जिस्की हम लोगों में बहुत ही कमी है घोर अन्धकार में जुगनू की तरह चमकने वाले ताता ऐसे एक हुए भी तो हाहन्त! कराल काल हमारी भविष्य भलाई को न देख सका उन्हे ऐसा जल्द हम लोगों के बीच से खींच ही तो ले गया-यों तो देश में एक से एक

चढ़े बढ़े परमोदार दानी पड़े हैं पर उनके दान से देश का क्या उपकार है ताता महाशय का दान इस तरह का दान है जिस्में देश के साथ सहानुभूति टपक रही है–दान हिन्दुस्तान में जितना होता है किसी देश में न होता होगा किन्तु जो क्रम हमारे यहां के दान का है उस्से देश की भलाई का होना कैसा बल्कि बुराइयां पैदा होती हैं और सच तो यों है कि देना ही हम सीखें हैं लेना तो जानते ही नहीं–दूसरी बात मातृ भाषा की उन्नति है हमारे प्रभुवर अंगरेज़ों का सितारा जो इस समय ऐसा चमक रहा है अधिकांश उस्का कारण अंगरेज़ी भाषा की तरक्की है–हिदुस्तान में इस समय बङ्ग देशियों से बढ़ कर किसी की तरक्की नहीं देखी जाती इस्का भी यही बड़ा कारण कहा जायगा कि बङ्ग भाषा कैसे ऊंचे शिखर पर चढ़ी हुई है–६८ या ७० वर्ष पहले बङ्ग भाषा किसी गिनती में न थी भारत चन्द्र ऐसे दो एक कवियों के ग्रन्थ के अतिरिक्त पढ़ने लायक ग्रन्थ इस्में बहुत कम थे भाषा का भाण्डार बिल्कुल खाली पड़ा था वही अब बंग भाषा संस्कृत का मुकाबिला कर रही है–अंगरेज़ी और संस्कृत तथा अन्यान्य भाषाओं का सार खींच अपना भाण्डार दिन प्रतिदिन भरती ही जाती है–हमारे प्रान्त में जिन्हे थोड़ा अंगरेज़ी लिखना पढ़ना आ गया है वे देश भाषा में कुछ लिखना अपनी हतक मानते हैं–बङ्गाल में रमेशचन्द्र सरीखे अंगरेज़ी के विद्वान् मातृ भाषा में कुछ लिखना या ग्रन्थ निर्माण को अपना सौभाग्य समझते हैं यह इसी का परिणाम है कि बंग भाषा इस समय सब भाषाओं की सिर मौर है और भारत की प्रान्तीय भाषाओं में कोई उस्का मुकाबिला नहीं कर सक्ती–अंगरेज़ी पढ़े सुशिक्षित हिन्दी में कुछ लिखना अपनी योग्यता में त्रुटि मानते हैं इसी से बहुत कम उत्तम पुस्तकें लिखी जाती हैं "स्माइल्स सेल्फ हेल्प" "क्रेक्स परसूट आफ नालेज" "टाइ टइम इट्स व्यालू" सी उपदेशात्मक पुस्तकें हमारी भाषा में एक भी अब तक नहीं लिखी गईं–उपन्यास लिखने

वाले अलबत्ता हो गये हैं जिन के उपन्यासों में सिवा दो एक के बहुत कम ऐसे हैं जिन्हे हम उत्तम कोटि का लेख कह सक्के हैं गोस्वामी किशोरी लाल लिखित उपन्यासों में कोई २ इस प्रकार के हैं जो हिन्दी साहित्य के भाण्डार में स्थान पाने योग्य हैं—केवल अंगरेज़ी के बड़े विद्वान् हो जाने से हमारी वास्तविक उन्नति असंभव है जब तक संस्कृत और हिन्दी का यथोचित प्रचार हम लोगों में न होगा जिसकी उर्दू फारसी सब ओर से ऐसा रेढ मारे हुये है कि सर्व साधारण में उसका प्रचार कठिन है-कहावत है एक हाथ ताली नहीं बजती न एक पहिये की गाड़ी चल सक्ती है जब तक स्त्री और पुरुष दोनों पढ़े लिखे न होंगे तब तक हम लोगों की गृहस्थी जो निरी झंझट इस समय हमे मालूम होती है कभी सुख की सार न होगी—उन घरानों का ज़िकिर ही क्या जहां स्त्री और पुरुष दोनों अक्षर सून्य हैं बरन वे घराने हमारी नज़र के सामने हैं जिन्मे पुरुष यावत्‌विद्या पारंगत सभ्यता के दर्पण कहे जाते हैं किन्तु घर के भीतर कट्टर जाहिली राज कर रही है हमारे सभ्य शिरोमणियें की एक नहीं चलनी; भूत प्रेत टोना टनमन पीर पैगम्बर आदि की मान मनौती नीचातिनीच घरानों का जो कुछ आचरण है कोई भी न बच रहे जिस्से गृहस्थाश्रम निरी झंझट और बोझा हो जाता है "पुरुष तो पूजैं द्यौहरा भून पूजनी जोय—एकै घर में दो मता कुशल कहां से होय—" यद्यपि स्त्रियों को वैद्यक और ज्योतिष पढ़ाय उन्हे हकीम और रम्माल नहीं बनाना है वेद के मंत्र घोखाय शान्ति पाठ करने वाली हो ऋत्विज् और सदस्य उन्हे नहीं बनाना है न छहो शास्त्रपढ़ाय उन्हे दार्शिनिक और फिलासोफर बनाना है पर हां विद्या के बाग की हवा उन्हे अवश्य खिलाना है "As is the thread so is the cloth, As is the mother so is the child" जैसा सूत होगा वैसा ही कपड़ा तैयार होगा—जैसी मा होगी वैसा ही उसका बालक होगा—जब तक मातायें पढ़ी लिखी न होंगी तब तक उनके लड़कों को अच्छी शिक्षा नहीं मिल सक्ती—जिन्हे भाग्य वश पढ़ी लिखी सुग्रहिणी

मिली हैं वे कह सक्ते हैं कि गृहस्थी का कितना कम झंझट उन्हे उठाना पड़ता है–यदि थोड़ा सा भी हिसाब किताब जानती होंगी तो पति की गाढ़ी कमाई को दास दासियों से लुटने न देंगी और उस कमाई को सौंत के रक्खैंगी–सुई का काम जानती होंगी तो कभी को भाग्य के प्रतिकूल होने पर अपनी कारीगरी से पति को कुछ न कुछ खर्च बर्च में सहायता दे सकैंगी–हमारी ललनाओं में अच्छी शिक्षा न होने से बाल्य विवाह की चेष्टा सर्वथा निरर्थक हो रही है–जिस घराने में स्त्रियां पढ़ी लिखी होंगी उस घर के बालक अपढ़ मूर्ख न होंगे स्त्रियों के मूर्ख रहने से ईश्वर की आधी सृष्टि मानो निरर्थक हो रही है इत्यादि कितनी बातें हैं जिसके न होने से हमारी समाज क्षति ग्रस्त हो रही है यह सामाजिक दुर्बलता ही है जो जातीयता हमारे में नहीं आने देती और जातीयता Nationality राजनैतिक बातों का प्रधान अंग है तो निश्चय हुआ कि हम कितना ही पढ़ें लिखैं विविध शिल्प और कला में विश्वकर्मा से प्रवीण हो जांय हमारी राज नैतिक कमज़ोरी तभी जायगी जब हम चेतैंगे और चिरकाल की निद्रा को विसर्जन कर कटिबद्ध हो पूर्वोक्त बातों के संशोधन में प्रवृत्त हो जांयगे–इसी से हम कहते हैं अब कब चेतोगे ? M. S.

कल्पना शक्ति।

मनुष्य की अनेक मानसिक शक्तियों में कल्पना शक्ति भी एक अद्भुत शक्ति है यद्यपि अभ्यास से यह शतगुण अधिक हो सक्ती है पर इसका सूक्ष्म अंकुर किसी२ के अन्तःकरण में आरंभ ही से रहता है जिसका नाम प्रतिभा है और कवियों के लेख में इसका पूर्ण उद्गार देखा जाता है–कालिदास श्रीहर्ष शेक्सपियर मिलटन प्रभृति कवियों की कल्पना शक्ति पर चित्त चकित और कभी २ को मुग्ध हो अनेक तर्क

वितर्क की भूल भुलैया में चक्कर मारता टकराता अन्त को इसी सिद्धान्त पर आकर ठहरता है कि [यह कोई प्राक्तनजन्य संस्कार का परिणाम है या ईश्वर प्रदत्त शक्ति खुदादाद या genius है–कवियों का अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा ब्रह्मा के साथ होड़ करना कुछ अनुचित नहीं है क्योंकि जगत् सृष्टा तो एक ही बार जो कुछ बन पड़ा सृष्टि निर्माण कौशल दिखलाय आकल्पान्त फरागत होगये कबिजन नित्य नई रचना के गढ़न्त से नजानिये कितनी सृष्टि निर्माण चातुरी दिखला चुके हैं यह कल्पना शक्ति काल्पनिक के हृद्गत भाव वा मन के परखने की कसौटी या आदर्श है–शान्त या बीर प्रकृति वाले से शृङ्गार रस प्रधान कल्पना कभी न बन पड़ेगी मतिराम और भूषण कबि इसके उदाहरण हैं–शृङ्गार रस में पगी जयदेव की रसीली तबियत के लिये दाख और मधु से भी अधिकाधिक मधुर गीत गोबिन्द ही की कविता बिशेष उपयुक्त थी राम रावण या कर्णार्जुन के युद्ध का बर्णन कभी उनसे न बन पड़ता–यावत् मिथ्या और दरोग की किबलेगाह इस कल्पना पिशाची का कहीं ओर छोर किसने] पाया है अनुमान करते २ हैरान गौतम से मुनि (गोतम) होगये कणाद किनका खा खा कर तिनका बीनने लगे पर मन की मन भावनी कन्या कल्पना का पार न पाया–कपिल बेचारे २५ तत्वों की कल्पना करते २ (कपिल) "पीले„ पड़ गये–व्यास ने इन तीनों महा दार्शनिकों की दुर्गति देख मन में सोचा कौन इस भूतिनी के पीछे दौड़ता फिरै यह संपूर्ण बिश्व भर जिसे हम प्रत्यक्ष देख सुन सक्ते हैं सब कल्पना ही कल्पना मिथ्या नाशवान् और क्षण भंगुर है अतएव हेय है–इन्ही की देखा देखी बुद्ध देव ने भी अपने बुद्धितत्व का यही निष्कर्ष निकाला कि जो कुछ कल्पना जन्य है सब क्षणिक और नश्वर है ईश्वर तक को इस कल्पना के अन्तर्गत ठहराय शून्य अथवा निर्बाण ही को मुख्य माना–रेखा गणित के प्रवर्तक उक्लैदिस युक्लिड की हर एक शक्लों में बिन्दु और रेखा

कल्पना करते २ हमारे सुकुमार मति इन दिनों के छात्रों का दिमाग़ ही चाट गये–कहां तक गिनावें संपूर्ण भारत का भारत इसी कल्पना के पीछे गारत होगया जहां सिवाय कल्पना Theory के Practical कर के दिखाने योग्य कुछ रहा ही नहीं–अन्त में अब यूरोप के अनेक विज्ञानियों की कल्पना शुष्क कल्पना से करतब्यता Practice में परिणत देख यहां वालों को हांथ मल २ पछताना और सच २ कल्पना पड़ा–प्रिय पाठक यह कल्पना बुरी बलाय है चौकस रहो इसके पेच में कभी न पड़ना नहीं तो पछताओगे आज हमने भी इस कल्पना की कल्पना में पड़ बहुत सी झूठी २ कल्पना कर आप का थोड़ा समय नष्ट करवाया क्षमा कीजियेगा ।

——

अकबर और नैपोलियन ।

आज हम फ्रांस देश के प्रसिद्ध सम्राट वीर नैपोलियन और भारत के प्रख्यात नीतिज्ञ सम्राट अकबर के जीवन की परस्पर तुलना किया चाहते हैं । जिस प्रकार नैपोलियन के होने से खास कर फ्रांस और साधारणतः सारे यूरोप में एक नये तरह का बिप्लव पैदा होगया उसी प्रकार भारत वर्ष में अकबर के होने से मुसलमानी राज्य की भारत में नये सिरे से स्थिति और दृढ़ता हुई । अकबर के पिता हुमायूं के पैर हिन्दुस्तान से उखड़ गये थे । यद्यपि उन्हों ने अपने निज देश वालों की सहायता पा कर भारत में आकर इब्राहिम लोदी को जीत फिर से राज मुकुट धारण कर के दिल्ली के शाही तख़्त को सुशोभित किया परन्तु बिना अकबर के हुए वह राज मुकुट भविष्यत् में मुगल सम्राट के सर पर सुशोभित न होता । हमारी समझ में तो यहां तक आता है कि भारत वर्ष में यदि उस समय अकबर का राज्य न होता तो मुगलिया खान्दान और मुसलमानी राज्य का उसी समय अन्त

हरे चुका था। अकबर की ही कुटिल नीति से प्रबल राजपूत जाति मुसलमानी राज्य के वश में होगई जिस प्रकार नैपोलियन ने अपनी बुद्धि के द्वारा सारे यूरोप में डावां डोल मचा दिया और बहुत से राज्यों को जीत कर अपने रिश्ते दारों स्नेहियों और मित्रों को बांट दिया उसी प्रकार अकबर ने भारत वर्ष के सब राजाओं को अपनी नीति बल से अपने अधिकार में कर लिया और अपने लड़के रिश्ते दारों और स्नेहियों को उन राज्यों पर सूबेदार नियत कर के स्वतंत्र रूप में उन्हे राज्य करने का अधिकार प्रदान कर दिया। अकबर के बिना महाराजा प्रताप सिंह को कौन नीचा दिखाने वाला था? सम्भव था कि यदि उस समय अकबर भारत के सम्राट न होते तो फिर प्रताप द्वारा भारत का प्रताप अधिकाधिक बढ़ता।

सन् १८०४ ईस्वी में नैपोलियन ने फ्रान्स का राज मुकुट धारण किया। इस से पहले भी इसने कई एक युद्ध किये थे और इसी लड़ने भिड़ने की रुचि और वीरता के कारण फ्रान्स का राज्य इसे मिला परन्तु फ्रान्स का राज्य पाकर भी नैपोलियन का युद्धोत्साह न मिटा उस ने युद्ध करना अपने कैद होने के दिन तक बराबर कायम रक्खा सम्राट् पदवी पाने के एक साल बाद उसने सन् १८०५ ईस्वी में आस्ट्रिया १८०६ में प्रोसिया और १८०९ में रूस से भयंकर युद्ध किया नैपोलियन का युद्धोत्साह देख फ्रान्स देश वासी इस से अप्रसन्न होगये। परन्तु बलवान के आगे किसी का बल नहीं चलता नैपोलियन के इस कार्य से लोग मन ही मन में बड़े दुःखित थे। सन् १८१२ में नैपोलियन ने चार लाख सैना ले कर रूस पर चढ़ाई करदी जहां से केवल बीस हज़ार फौज़ भूखों मरती प्रायः अधमरी हो लौट आई रूसी सेनापति अपनी राजधानी मास्कों में आग लगा कर भाग गया इस चढ़ाई में नैपोलियन के हाथ सिवाय अपनी सेना को मरु देश में ले जा कर नष्ट कर देने के और कुछ न हाथ लगा जब नैपोलियन के उपद्रव

से सारा यूरोप दुखित हो गया तब आस्ट्रिया प्रोशिया रूस और इङ्गलेण्ड ने मिलकर सन् १८१३ में इस के साथ युद्ध करके इसे पकड़ लिया और क़ैद कर लिया। परन्तु क़ैद से भी भाग आया। अन्त में सबों ने मिलकर इसे युद्ध में फिर बुलाया। वहां पर बड़ी नीति निपुणता से यह पकड़ा गया और सेंटहिलेना टापू में क़ैद कर के रक्खा गया। इस प्रकार यूरोप का कंटक वीर नेपोलियन का अन्त हुआ॥

अकबर ने भी १४ वर्ष की उमर में सन् १५५६ में भारत वर्ष का राज्य पाया। पहले ही पहल उसे हेमू बक्काल से लड़ना पड़ा जिसे उसने वेराम खां की मदद से जीता। परन्तु बाद को वेराम को भी उसने हरा कर सन् १८६० में स्वतंत्र रूप से राज्य का भार अपने हाथ में लिया। अकबर से पहले भारत वर्ष में मुसलमानों का राज्य पूरे तौर पर नहीं था। अकबर ने मालवा बंगाल दक्षिण और राजपूताने को विजय कर के अपने राज्य में मिलाया॥

जिस प्रकार नेपोलियन का जीवन लड़ाई झगड़े में कटा उसी प्रकार अकबर को भी जन्म भर लड़ना पड़ा। नेपोलियन की तरह अकबर इतना युद्धोत्साही तो न था परन्तु वह बराबर राजपूतों की सहायता से युद्ध करने और अपने राज्य की वृद्धि करने में ही लगा रहा। दोनों ने ही बड़े बड़े संकट झेल कर राज्य पाये। आजन्म राज्य के लिये दोनों लड़ते रहे। दोनों युद्ध विशारद और बुद्धिमान् थे। परन्तु नेपोलियन की तरह अकबर केवल वीर ही न था वरन वह बड़ा नीतिज्ञ भी था उसने भारत में एकता फैलाने के लिये अनेक रूप धरे। स्वतः हिन्दू बना, हिन्दुओं और मुसलमानों में आपस में बिवाह शादी हो इसकी उसने बहुत चेष्टा की परन्तु उस की चेष्टा फली भूत न हुई। केवल दो एक राजाओं ने परबस ही कृत्रिम कन्यायें दीं बड़े उद्योग करने पर भी वह इस से अधिक कुछ और न कर सका॥

आग जिस तरह जलते जलते अपने आप ही राख होकर बुझ जाती है उसी प्रकार नेपोलियन के जीवन का हाल हुआ। उसने यूरोप में सब ठौर समराग्नि सुलगा दी जिसका परिणाम अन्त में उसके लिये बहुत बुरा हुआ॥

अकबर का चाल चलन बहुत ही बुरा था सदैव पर स्त्री रत रहने की उसकी इच्छा रहती थी। इसी इच्छा पूर्ति के लिये वह सदैव औरतों का बाज़ार महलों में लगवाता जिसका नाम उसने मीना बाज़ार रक्खा था उसमें बड़े बड़े घरों की स्त्रियें आतीं चीज़े बेचतीं और खरीदतीं। अकबर महलों में से बैठ कर यह सब चरित्र देखता था। इसका ख़ाका बाबू राधा कृष्ण दास काशी बासी ने महाराजा प्रताप नाटक में बहुत ही अच्छा खींचा है। जिन लोगों ने आगरे का क़िला देखा है वे अकबर की बैठक और मीना बाज़ार की जगह को अच्छी तरह जानते होंगे। उस जगह को उस ने किस चतुराई से बनवाया है यह बात स्पष्ट प्रगट होती है। नेपोलियन का यह हाल नहीं था वह युद्ध से फुरसत पाने पर सदैव ईश्वर के ध्यान व अन्य लड़ाई के बिषयों में मग्न रहता। उसके जीवन के विलासी होने का चिन्ह तक नहीं पाया जाता था। उसे निज भोग विलास से बीरता की कीर्ति अधिक प्रिय थी। वह पक्का इसाई था अकबर की तरह धर्म में उसका चित्त डावां डोल न था और न मतलब के लिये धर्म बदलने को तय्यार हो जाता था। अकबर बड़ा कुटिल था उसने जिनके द्वारा बिजय पाई उनका ही अपमान किया उनको ही अपनी लड़कियां देने को मजबूर किया परन्तु नेपोलियन के साथ जिसने ज़रा भी सलूक किया उसे उसने फायदा पहुंचाया। अकबर राजपूतों को तबाह करने की जन्म भर फिकर में रहा। अकबर ने देशोन्नति के भी काम किये जहाँ पर युद्ध करके उसने देश का नाश किया प्रजा को पीड़ा पहुंचाई वहां पर उसने देश हित के लिये कुएं खुदवाए, सड़कें बनवाईं, माल गुज़ारी के कायदे जारी किए इमारतें

बनवाईं, देश की कारीगरी और तिजारत की भी तरक्की अकबर के ज़माने में भारत वर्ष की हुई मगर नेपोलियन के ज़माने में फ़्रांस को हानि के सिवाय कुछ लाभ नहीं पहुंचा मार काट के कारन तिजारत, कारीगरी और खेती का देश में नाश हो गया। लड़ाई के कारण फ़्रांश की प्रजा घबड़ा गई। अकबर और नेपोलियन के जीवन में बहुत सी बातें मिलती हैं। नेपोलियन के कारण से ही फ़्रांश देश का नाम प्रसिद्ध हुआ और उसके पश्चात् उसकी कीर्ति बढ़ी। आज फ़्रांस की जो तरक्की देख पड़ती है वह सब नेपोलियन की ही बदौलत है इसमें कोई सन्देह नहीं परन्तु भारत की जो आज कल दुर्दशा है उसका आरम्भ तो बहुत पहले हो चुका था परन्तु पूर्ण रूप से इसकी दुर्दशा अकबर के ज़माने में ही आरम्भ हुई। यदि अकबर के समय में यहां के राजा महाराजा कमज़ोर न हो जाते तो यह हालत आज कल भारतवासियों की न होती॥

सूर्य कुमार वर्मा

गीतासार समुच्चय।

पहले के आगे से

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञानविचेतहः।
राक्षसीमासुरींचैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रितः॥

बुद्धि को भ्रंश करने वाली तामसी और राजसी प्रकृतियों में स्थित अर्थात् निरन्तर तमोगुण और रजोगुण वाली वस्तुओं को सेवन करते २ या तमोगुणी रजोगुणी स्वभाव वालों के बीच रहने से जिनकी

बुद्धि सतोगुण की ओर कभी जाती ही नहीं (सतोगुण रजोगुण तमोगुण के त्रिगुण विभाग को आगे की एक अध्याय में दिखावेंगे) यही कारण है उनकी बुद्धि के भ्रंश होने का; और भी जिनकी आशा काम और ज्ञान परमार्थ में निष्ठा न रहने से मानो व्यर्थ और निष्फल है; जिनका चित्त संसारिक विषय वासनाओं में विक्षिप्त सा हो रहा है; ऐसे लोग सब भूत मात्र का महेश्वर मेरा परमतत्व न जान मुझे मनुष्य देहधारी मान मेरा अपमान करते हैं—इसी के विरुद्ध—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्राकृति माश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

दैवी प्रकृति अर्थात् जिन्में शुद्ध सात्विक भाव है रजोगुण तमोगुण का कहीं से लगाव भी नहीं है ऐसे महात्मा जन अनन्य चित्त हो मुझे जगत् का कारण और अविनाशी समझ भजते हैं—जिनके भजने का कई प्रकार है सो आगे कहते हैं—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥

कोई गुरूपदिष्ट मार्ग मंत्र आदि से मेरा निरन्तर कीर्तन करते हैं कोई अपने सिद्धान्त के बड़े पक्के दृढ़ विश्वास पूर्वक मेरे जानने के उद्योग में लगे रहते हैं—कोई विमल निष्कपट भक्ति से मेरी मूर्ति आदि को नमस्कार करते हुये मेरा भजन करते हैं या भूत मात्र में मुझी को विद्यमान समझ स्वभावतः प्रवण चित्त होते हैं—कोई स्थिर चित्त हो मेरी उपासना ही को मुझे भजना मानते हैं—

ज्ञानयज्ञेनचाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्क्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥

कोई ज्ञान योग से उपासना के द्वारा मेरी पूजा करते हैं; कोई एकत्व अर्थात् अहं भाव छोड़ अपने को ईश्वर से पृथक् न मान जीव और

परमात्मा को एक मान मेरी उपासना करते हैं-कोई पृथकत्व अर्थात् सेव्य सेवक भाव के द्वारा मुझे भजते हैं और सर्व व्याप्त सर्वात्मक मुझको मूर्ति में पूजते हैं-आगे "अहं क्रतुरहं यज्ञ" इत्यादि कई श्लोकों में भगवान् अपनी सर्व व्यापकता देखाय कहते हैं

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

किसी दूसरे की उपासना न कर जो अनन्य भाव से मेरे में अपना चित्त लगाये रहते हैं सब भांत मत्परायण हैं उनका योग क्षेम हमी करते हैं-जो प्राप्त नहीं है उसके लिये यत्न योग है और प्राप्त की रक्षा क्षेम है सो यह दोनों उनके लिये सम्पादन कर देने का भार हम अपने ऊपर लिये रहते हैं-

ये प्यन्य देवता भक्ता यजन्तेश्रद्धयान्विता ।
तेपिमामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

श्रद्धा युक्त भक्तिमान् हो जो लोग अन्य देवता का पूजन करते हैं वे भी मेरी ही पूजा करते हैं किन्तु अविधि पूर्वक पूजते हैं इसलिये कि उनमे आस्तिक्य भाव का अंकुर श्रद्धा तो है पर भटके हुये हैं कदाचित् कभी को ठीक रास्ते पर आजांय तो क्या आश्चर्य-दूसरे यह कि जब सबों में हमी व्याप्त हैं हमे छोड़ संसार में और कुछ हई नहीं तो साक्षात् सम्बन्ध से नहीं पर गौण सम्बन्ध से वे मुझे भजते ही हैं-

अहंहि सर्व यज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेवच ।
नतुमामभिजानन्ति तत्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥

सब यज्ञों का भोक्ता अर्थात् जो यज्ञ में आहुति दी जाती है वह मुझी को पहुंचती है और यज्ञ पति मेरा नाम ही तो यज्ञों के

स्वामी भी हमी हुये किन्तु अज्ञानी इसे नहीं जानते इससे तत्व तक नहीं पहुंचते–आगे कहते हैं–

यान्ति देवव्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोपि माम् ॥

देवताओं की पूजा करने वाले देव लोक में जाते हैं; पितरों का पूजन करने से पितृ लोक में जाते हैं; पंच भूत पदार्थ के बने हुओं पर भक्ति या श्रद्धा रखने वाले उसी में जा मिलते हैं; और मुझे अनन्य भक्ति से उपासना करने वाले मुझे पा जाते हैं–

'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः" ॥

पत्र पुष्प फल या केवल जल जो मुझे भक्ति के साथ अर्पण करता है उसे मैं बड़ी रुचि से खाता हूं या ग्रहण करता हूं–भक्ति मार्ग और उपासना काण्ड का यह बड़ा पोषक श्लोक है–

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
तत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्" ॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनै ॥

जो कुछ काम करते हो जो भोजन करते हो होम करते हो देते हो तपस्या करते हो सब मेरे अर्पण अर्थात् कृष्णार्पण कर दो ऐसा करते रहोगे तो शुभ अशुभ कर्म के बन्धन से मुक्त रहोगे–तात्पर्य यह कि जब किसी वस्तु या काम में तुम्हारी सत्ता ही न रही तब उसका परिणाम सुख दुःख का भोग तुम्हे काहे को फिर भुगतना पड़ेगा सुख को सुख दुःख को दुःख मान हर्ष और बिषाद को चित्त में स्थान देना ही बन्धन है–

"समोहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योस्ति नप्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषुचाप्यहम्" ॥

मै भूत मात्र में सम भाव रखता हूं न मेरा कोई शत्रु है न मित्र जो भक्त प्रवण हो मुझे भजते हैं वे मुझ में रहते हैं और मैं उन्में-वह भूत मात्र में व्याप्त है परन्तु श्रद्धा और भक्ति से विमुख जन यही समझते हैं कि वह उन्में नहीं है-न उनको अपने स्वरूप की पहचान है इसी से श्रद्धा और भक्ति का अंकुर भी उनके चित्त में नहीं जमता ऐसे अज्ञ लोग यह भी समझते हैं कि स्तुति और निन्दा से वह तुष्ट और रुष्ट हुआ करता है-वास्तव में उसकी स्तुति मानो अपनी ही स्तुति और उपकार है और उस्की निन्दा अपनी ही निन्दा और हानि का हेतु है-

आपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव समन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहिसः ॥

बड़ा दुराचारी भी मुझको अनन्य भक्ति से जो पूजता है अर्थात् सब में मुझी को देखता है उसने अच्छा समझ रक्खा है-उसे दुराचारी न कहना चाहिये-यह निश्चय मानो मेरा भक्त नष्ट नहीं होता किन्तु जल्द उसे शान्ति आ जाती है तब वह सब दुराचार से मुक्त हो धर्मात्माओं की कोटि में आ जाता है-

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये पि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परांगतिम्" ॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

निकृष्टयोनि के अन्त्यज जाति वाले चाण्डाल इत्यादि स्त्री वैश्य तथा शूद्र भी मेरी सेवा कर उत्तम गति को पा गये हैं तब सुकृती जन

ब्राह्मण तथा राजर्षियों का क्या कहना वे तो मेरी आराधना के अधिकारी हुई हैं-ऐसे लोग जो मेरे भजन से परंगति को पावैं तो कौन सा अचरज है-हे अर्जुन इस संसार को नश्वर और दुःख रूप मान मेरा भजन करो-शेष-

——

प्राचीन ग्रन्थकार और कवियों की जीवनी।

जगद्धर।

भवभूति कृत मालवी माधव नाम नाटक की टीका इन्ही महाशय ने बनाई है। उसके प्रत्येक अङ्क की टीका के अन्त में इन्हों ने अपने माता पिता का नाम दिया है और ग्रन्थ की समाप्ति में भी अपने बंश का संक्षेप में कुछ परिचय दिया है जिस से बिदित होता है कि द्विजाति कुल तिलक चण्डेश्वर नाम एक प्रसिद्ध मीमांसक पण्डित हुए जिनके पुत्र रामेश्वर पण्डित भी एक प्रसिद्ध मीमांसक थे। रामेश्वर के पुत्र गदाधर, गदाधर के पुत्र विद्याधर और उनके पुत्र रत्नधर हुये। ये ही रत्नधर जगद्धर के पिता हैं। जगद्धर ने निज माता का नाम दमयान्तिका लिखा है। ये जगद्धर न्याय वैशेषिक, व्याकरण, काव्य आदि में बहुत निपुण जान पड़ते हैं। इनके रचित मालती माधव नाटक के टीका की संस्कृत जानने वालों के बीच बड़ी प्रतिष्ठा है। इन्हों ने ग्रन्थ के अन्त में अपने पिता की उपाधि "श्रीमन्महोपाध्याय पण्डित राज महाकविराज धर्माधिकारी" ऐसा लिखा है। इससे सिद्ध हुआ ये महा पण्डित विद्वज्जनों के कुल में उत्पन्न हैं। इनके रचित और २ ग्रन्थों के नाम वेणी संहार की टीका और वासव दत्ता की टीका है॥

इनका समय पण्डित वर रामकृष्ण भाण्डार कर के निर्णयानुसार ख्रीष्टीय १४ वीं शताब्दी से पूर्व नहीं हो सकता।

जगन्नाथ पण्डित राज।

ये महाशय प्रसिद्ध आलङ्कारिक और कवि दिल्ली के बादशाह के दरबार में थे। इनने भामिनी बिलास के अन्त के लिखा भी है "दिल्ली वल्लभ पाणि पल्लव तले नीतं नवीनं वयः" ये तैलङ्ग देश में राज महेन्द्र प्रान्त के निवासी थे पर चिरकाल इन्हों ने काशी में रह विद्याभ्यास किया। इन के पिता का नाम पेरु भट्ट, माता का लक्ष्मी और गुरु का नाम ज्ञानेन्द्र भिक्षु था। जयपुर के राजा की आज्ञानुसार जयपुर और काशी में इन्हों ने नक्षत्रों के देखने के उपयुक्त कौतुकालय बनवाये। काशी में मान मन्दिर घाट पर अब तक यह कौतुकालय बना है पर भूमि के हिल जाने से अब उस स्थान से नक्षत्रादि ठीक नहीं देख पड़ते। इनका समय लोगों ने सन् १६२० ई०–१६६० ई० तक दिल्ली की राज सेवा में कटा ऐसा सिद्ध किया है। अत एव वहीं बादशाह से इन्हे पण्डित राज की पदवी भी मिली। इनके रचित ग्रन्थों के नाम–रस गङ्गाधर, मनोरमा कुचमर्दन, गङ्गा लहरी, करुणा लहरी, अश्वधाटी काव्य, भामिनी बिलास इत्यादि हैं। सुनने में आता है कि इनने किसी मुसलमानिन के प्रेम में फंस उस से बिवाह कर लिया था जिस से ब्राह्मणों ने इन्हें जात बाहर कर दिया। अन्त में गङ्गा लहरी रचते २ काशी में गङ्गा तट पर इनने प्राण त्याग किया॥ बुढ़ापे में कुछ दिन ये मधुपुरी (मथुरा) में भी बसे थे। प्रदीप की तेरहवीं जिल्द में इनका विशेष हाल विस्तार सहित दिया गया है॥

जयदेव (१)

ये महाशय गीत गोविन्द के रचयिता अत्यन्त मधुर और ललित कविता बनाने के कारण प्रसिद्ध हैं। इन्हों ने निज रचित गीत गोविन्द में अपने माता पिता का नाम दिया है जिससे विदित होता है कि इनकी माता का नाम बामा देवी और पिता का नाम भोज देव था। बङ्गाल में बीर भूमि नाम स्थान से कुछ दूर हट कर भागीरथी

में गिरने वाला अजय नाम एक नद है इसी नद के तीर पर केंदुली नाम गांव है जिसे लोग जयदेव की जन्मभूमि बतलाते हैं।

"वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रवणेन।
केन्दु बिल्व समुद्र संभव रोहिणी रमणेन॥"

जिससे स्पष्ट विदित होता है कि ये बंगाल में केंदुलीं नाम गाँव के निवासी थे॥

जयदेव के समय के विषय में विचार करने से यही समझ पड़ता है कि ये उमापति धर (जिनका कि वर्णन पूर्व में हो चुका है) के सम कालीन थे। ये उमापति धर बंगाल के उस राजा लक्ष्मण सेन के मंत्री थे जो सन् ईस्वी १११६ में वर्तमान थे और जिनके पिता दानसागर के रचयिता बल्लाल सेन के नाम से सेन बंश के राजाओं के बीच अत्यन्त प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हैं। अतएत यही अनुमान ठीक जंचता है कि उमापति के समकालीन होने से जयदेव भी ख्रीष्टीय १२ वीं सदी के पूर्व भाग में विद्यमान माने जांय। जयदेव ने गीत गोविन्द में अपने सम कालीन कवियों की नामावली का जो श्लोक दिया है सो ऊपर उमापति धर के वर्णन में उठाया जा चुका है और कविराज के प्रकरण में भी एक ऐसा श्लोक उठाया जा चुका है जिस से उमापति-धर, शरण, गोबर्द्धन और कविराज आदि जयदेव के समसामयिक और लक्ष्मणसेन के सभासद सिद्ध होते हैं।

पृथ्वी राज रासा के रचियता कवि चंद १२ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में विद्यमान थे यह बात इतिहास से सिद्ध मानी जाती है और इन चन्द कवि ने निज रचित ग्रन्थ में जयदेव कृत गीत गोविन्द का नाम दिया है इस से उपरोक्त बात प्रमाण द्वारा परिपुष्ट होती है कि जयदेव १२ वीं सदी के पूर्व भाग में रहे हों॥

जयदेव के रचित गीत गोविन्द की कई एक टीका देखने में आती हैं जिनमें सब से पुरानी टीका भगवती भवेश के बेटे मैथिल कृष्ण दत्त

की बनाई जान पड़ती है। भक्तमाल में भी बिस्तार पूर्वक जयदेव का चरित्र बर्णन किया गया है। संस्कृत ग्रन्थकार भक्तों के बीच जयदेव प्रसिद्ध भी बहुत हैं लोग तो यहां तक कहते हैं कि स्वयं भगवान् श्री कृष्ण जी भी गीत गोविन्द के गान से रीझ जाते हैं। संस्कृत जानने वालों में बिरला ही कोई होगा जो गीत गोविन्द काव्य और जयदेव कवि का नाम न सुने हो। जयदेव रचित गीत गोविन्द के एक श्लोक का पूरा २ भाव कुवलयानन्द के उध्रित एक श्लोक में पाया जाता है। पर यह निर्णय अत्यन्त दुर्घट है कि उन श्लोकों में से कौन अधिक प्राचीन है-

वे श्लोक यथा-

हृदि विसलता हारो नायं भुजङ्गम नायकः।
कुवलय दल श्रेणी कण्ठे न सा गरल द्युतिः॥
मलयजरजो नेदं भस्म प्रिया रहिते मयि।
प्रहर न हर भ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि॥

यह श्लोक गीत गोविन्द में विरही पुरुष की ओर से उठाया गया है। इसी आशय का दूसरा श्लोक कुवलयानन्द में बिरहिणी स्त्री की ओर से उठाया गया है-

यथा-

जटा नेयं बेणी कृत कच कलापो न गरलं।
गले कस्तूरीयं शिरसि शशिलेखा न कुसुमं॥
इयं भूतिर्नाङ्गे प्रिय बिरह जन्मा धवलिमा।
पुराराति भ्रान्त्या कुसुम शर किं मां प्रहरसि॥

जयदेव (२)

ये प्रसिद्ध ग्रन्थकार प्रसन्न राघव नाम नाटक के रचयिता हैं।

ये नैयायिक भी थे। प्रसन्न राघव की प्रस्तावना में इस बात की शङ्का उठाई है कि जो कवि है वह उत्तम नैयायिक कैसे हो सक्ता है और उसका समाधान विचित्र रीति से किया है जैसा कि नीचे लिखे श्लोक से प्रकट हो जाता है—

येषां कोमल काव्य कौशल कला लीलावती भारती।
तेषां कर्कश तर्क वक्र वचनोद्गारेऽपि किं हीयते॥
यैः कान्ता कुच मण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता।
स्तैः किं मत्त करीन्द्र कुम्भ शिखरे नारोपणीयाः शराः॥

अर्थात् जिन मनुष्यों की बाणी कोमल काव्य रचना की निपुणता वा चातुर्य की कला से भरी चमत्कार उपजाने वाली है क्या उनकी वही बाणी न्याय शास्त्र के रूखे और कुटिल बचनों के उच्चारण से नीच हो सक्ती है भला देखो तो जिन विलासियों ने आनन्द पूर्वक अपनी ललनाओं के गोल स्तनों पर नखों के चिन्ह किये हों वे क्या मतवाले हाथी के ऊंचे गण्डस्थलों पर अपने बाणों का घाव नहीं करते?

इन्हों ने अपनी माता का नाम सुमित्रा, पिता का नाम महादेव और अपने आपको कौन्डिन्य अर्थात् कुण्डिनपुर निवासी बतलाया है निज रचित ग्रन्थ में इनने निम्न लिखित कवियों का नामोल्लेख किया है—

चोर, मयूर, भास, कलिदास, हर्ष और बाण

अनुमान से विदित होता है कि ऊपरोक्त सब कवि ख्रीष्टीय सातवीं शताब्दी की समाप्ति के पूर्व प्रसिद्ध हो चुके थे अतएव यह जयदेव सातवीं शताब्दी से पिछले जान पड़ते हैं। परन्तु गीत गोविन्द कार जयदेव से अवश्य भिन्न हैं क्योंकि न तो इन के माता पिता और न निवास स्थान का मेल है। प्रत्युत इन्हीं प्रसन्न राघवकार जयदेव ही की उपाधि पक्षधर मिश्र और पीयूषवर्ष थी ऐसा भी

लोग अनुमान करते हैं। चन्द्रालोक नाम ग्रन्थ भी इन्हीं जयदेव का बनाया हुआ है। जयदेव रचित रतिमञ्जरी नाम छोटा सा ग्रन्थ भी देखने में आता है पता नहीं कि यह कौन जयदेव हैं।

श्री हर प्रसाद शास्त्री ने लिखा है कि पक्षधर मिश्र ई० १५ वीं शताब्दी में मिथला में विद्यार्थियों को पढाया करते थे यह अनुमान बहुत कर के सत्य ही होगा क्योंकि गोस्वामी तुलसी दास जी जिन्हों ने हिन्दी भाषा में राम चरित मानस नाम का रामायण लिखा है उनका जीवन काल प्रायः सन् १५२६ से १६२३ ई० तक था अर्थात् १६ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में था। इन गोसाई ने प्रसन्न राघव नाटक के भावों को अपनी रामायण में भर दिया है ऐसा अनुमान होता है क्योंकि ऐसे भाव बहुधा ग्रन्थों में नहीं मिलते यथा–उदाहरणार्थ दो चार श्लोक लिखे जाते हैं–

"झगिति जगती मागच्छन्त्याः पितामह विष्टपान्महति पथियो देव्या वाचः श्रमः समजायत। अपि कथमसौ मुञ्चेदेनं नचेदवगाहते रघुपति गुणग्रामं श्लाघ्यां सुधामय दीर्घिकाम्" ॥

भक्ति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत शारद आवत धाई ॥
राम चरित सर बिनु अन्हवाये। सो श्रम जाय न कोटि उपाये ॥

नेदं धनुश्चलति किञ्चिदपीन्दुमौलेः कामातुरस्य वचसा मिव सं बिधानै रभ्यर्थितं प्रकृति चारु मनः सतीनाम् ॥

डगै न शम्भु शरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे ॥
चन्द्रहास हर में परितापं। रामचन्द्र बिरहानल जातम् ॥
त्वं हि कान्ति जित मौक्तिक चूर्णं। धारया वहसि शीतलमम्भः ॥

चन्द्रहास हर मम परितापं । रघुपति बिरह अनल संजातं ॥
शीतल निसि तव असि बर धारा । कह सीता हर मम दुख भारा ॥

———

कुरु सकरुणं चेतः श्रीमन्नशोक वनस्पते दहन कणिकामेकां तावन्मम प्रकटी कुरु। ननु बिरहिणी सन्तापाय स्फुटीकुरुते भवान्तव किसलय श्रेणी व्याजात्कृशानुशिखावलिम् ॥

सुनहु बिनय मम बिटप अशोका । सत्य नाम कर हरु मम शोका ।
नूतन किसलय अनल समाना । देहि अगिन जनि करहि निदाना ॥

हिमांशुश्चण्डांशुर्नव जलधरो दाव दहनः सरिद्वीची वातः कुपित फणि निश्वास पवनः । नवामल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्त गहनं ममत्वद्विश्लेषात्सुमुखि विपरीतं जगदिदम् ॥

राम बियोग कहा तब सीता । मोकहं सकल भयेउ विपरीता ।
नव तरु किसलय मनहु कृसानु । काल निसा सम निसि ससि भानू ॥
कुवलय बिपिन कुन्त बन सरिसा । बारिद तप्त तेल जनु बरिसा ॥
जेहि तरु रहे करै सोई पीरा । उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥

———

अतएव प्रसन्न राघवकार जयदेव तुलसी दास जी के पहिले अर्थात् १५ वीं सदी में विद्यमान रहे होंगे । कुछ लोग पक्षधर मिश्र को प्रसन्न राघवकार से भिन्न मानते हैं पर ऐसे संशय करने का कोई विशेष स्थल उपस्थित नहीं होता ॥

जनार्दन भट्ट ।

बम्बई की छपी काव्य माला के एकादश गुच्छक में इन कवि महाशय का विरचित शृङ्गार शतक नाम ग्रन्थ देखने में आता है पर

निवास या समय आदि का पता नहीं लगता है । काव्य की रचना देखने से कवि बहुत ही अर्वाचीन नहीं जान पड़ते । ग्रन्थ में इनके पिता का नाम जगन्निवास गोस्वामी लिखा मिलता है । ग्रन्थ में एक ऐसा श्लोक मिलता है जो इनके पूर्व कवियों की नामावली बताता जान पड़ता है वह श्लोक यथा—

विख्याता रघुवंशवद्‌गुण गणैः शृङ्गार सारा परं शृङ्गार रसमञ्जरीवदमला माघार्थवत्सत्तनौ । क्लिष्टा नैषधवच्च मान करणे कादम्बरीवद्रते नाना श्लेष विचक्षणो विजयते सारङ्ग स्येक्षणा ॥

इस से विदित होता है कि कालिदास, भानुदत्त मिश्र, माघ, श्रीहर्ष, बाण आदि कवि इनके समय में प्रसिद्धि पा चुके थे । उपरोक्त कवियों में से भानुदत्त मिश्र सब से अर्वाचीन बूझ पड़ते हैं और उनका समय प्रायः १४ वीं शताब्दी का अन्तिम वा पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जा सकता है । निदान वे कवि भानुदत्त जनार्दन भट्ट के समय में प्रसिद्ध हो चुके थे इनकी प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिये यदि लगभग ६० वर्ष छोड़ दिया जाय तो इन गोस्वामी जी का समय सोलहवीं सदी का पिछला भाग अनुमान किया जा सकता है ॥

जोन राज ।

कल्हण ने जो राज तरङ्गिणी सन् ११४८ ई० में लिखी उसको समाप्त नहीं करने पाये । कल्हण के छोड़ने पर राज तरङ्गिणी का पिछला अंश अर्थात् दूसरी राज तरङ्गिणी इनने रची । निज रचित ग्रन्थ भाग में ये अपने समय का परिचय इस प्रकार से देते हैं—

श्री जोन राज विबुधः कुर्वन् राजतरङ्गिणीम् ।
सायकाग्निमिते वर्षे शिव सायुज्य मावसत् ॥

अर्थात् पण्डित जोनराज महाशय संबत ३५ में राजतरङ्गिणी

विरत्त कर शिव सायुज्य को प्राप्त हुये। यह संवत् ३५ लौकिक वा कश्मीरी संवत् समझना चाहिये। अतएव यह बात निर्द्धारित होती है कि इन पण्डित ने सन् १४१२ ई० में प्राण त्याग किया। सो इनका समय अनुमान से १४ वीं शताब्दी का पिछला भाग और पन्द्रहवीं सदी के आरम्भ के १२ वर्ष हैं। जोन राज की बनाई राज तरङ्गिणी का नाम लोगों ने दूसरी राज तरङ्गिणी रक्खा है। इनने भारवि के किरातार्जुनीय की टीका भी बनाई है ऐसा जान पड़ता है॥

इनके शिष्य का नाम श्रीवर पण्डित है जिनने शाके १४११ वा १५५५ ई० में तीसरी राज तरङ्गिणी बनाई। राज तरङ्गिणीकार सब कश्मीर ही के रहने वाले हैं॥

त्रिविक्रम भट्ट।

ये कवि प्रसिद्ध विद्वान् देवादित्य शर्मा के पुत्र थे। लड़कपन में इनकी विशेष अभिरुचि पढ़ने लिखने में न थी। पर प्रयोजन वश सरस्वती देवी की आराधना कर कुछ काल लों उन देवी की कृपा से विद्या का परिचय इनको भली भांति रहा सुनने में आता है कि सरस्वती की अनुग्रहावस्था के अवसर में सात दिन में इनने सात उछ्वास वाला नलचम्पू नामक एक अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ रचा। चम्पू ग्रन्थ बहुधा खण्डित ही छोड़ दिये जाते हैं निदान नलचम्पू भी खण्डित है। त्रिविक्रम भट्ट की उपाधि यमुना त्रिविक्रम थी॥

नलचम्पू में बाण भट्ट का नाम लिखने से विदित होता है कि ये सातवीं शताब्दी ख्रीष्टीय से पिछले हैं। और भी सरस्वती कण्ठाभरण में भोजराज ने नलचम्पू से एक श्लोक उठाया है। त्रिविक्रम के समय तक बाण तथा भोज के समय तक त्रिविक्रम को ख्याति प्राप्त करते कुछ समय लगे होंगे। अतएव त्रिविक्रम का समय आठवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक के बीच में किसी समय माना जा सकता है। इनका विस्तार पूर्वक वर्णन हिन्दीप्रदीप की १८ वीं जिल्द की ८, ९, १० संख्या में किया जा चुका है॥

लंकापति रावण और बौद्ध धर्म।

लंकाधिपति रावण कब हुआ और वह किस धर्म का अनुयायी था यह बात हिन्दू धर्मानुसार स्पष्ट है। संस्कृत के आदि कवि महात्मा बाल्मीकि ने रामायण को निर्माण कर के रावण के धर्म कर्म इत्यादि सारे जीवन का विवरण लिख दिया है। परन्तु आज कल अंगरेज़ी सभ्यता के ज़माने में नए नए अन्वेषणकर्ताओं के दिमाग़ से निकले हुए नवीन विचारों से सर्व साधारण को अनेक प्रकार की शंकायें पैदा होने लगीं हैं। वे लोग आज कल के लोगों के विचारों को पढ़ कर भ्रमजाल में पड़ जाते हैं। कोई कोई महाशय कहते हैं कि रामायण का उत्तर काण्ड पीछे का बनाया हुआ है बाल्मीकि कृत नहीं। बाज़ बाज़ लोग तो यहां तक कहने लगे हैं कि राम लक्ष्मण और सीता इत्यादि पैदा ही नहीं हुए बाल्मीकि ने एक कल्पित रूपक अपनी विलक्षण कविता शक्ति से रच कर खड़ा कर दिया है। इसी प्रकार अनेक अटकल बाज़ अनेक प्रकार के अटकल पच्चू लगा कर भारत के प्राचीन गौरव की मर्यादा कम करने की चेष्टा करते हैं। यद्यपि इनके विचारों से भारत वासियों के विचार सहसा बदल नहीं सकते। वे इतने दृढ़ हो गए हैं कि यदि उन सच्चे विचारों के साथ कुछ अंध विश्वास भी शामिल हो गया है तो वे उस विश्वास को भी परित्याग करने में असमर्थ है। फिर सच्चे विश्वास और विचार वे किस प्रकार त्याग सकते हैं। परन्तु अंगरेज़ी पढ़े लिखे प्राचीन हिन्दू धर्म पर विश्वास न रखने वाले भारत वासी झट पट अपने विचार इन अन्वेषण कर्ताओं के विचारों से बदले लेते हैं। इन अन्वेषण कर्ताओं की भी महिमा अपरम्पार है। उनके मन में जो आता है वे उसे बिना सोचे बिचारे झट कह बैठते हैं। रामायण की बात जाने दीजिए, क्योंकि वह तो हिन्दूओं के अनुसार त्रेता युग की बात है; परन्तु अंगरेज़ी इतिहासकारों के अनुसंधान के अनुसार भी उस बात को

आज साढ़े तीन हज़ार वर्ष से अधिक ज़माना गुज़र चुका है। हम आप को हाल का ही समाचार बतलाते हैं जिसे अभी बहुत समय नहीं हुआ। फ्रान्स के नेपोलियन का नाम सभी लिखे पढ़े लोगों को विदित है। हम ने अभी हाल ही में एक अंगरेज़ी पुस्तक में यह पढ़ा कि नेपोलियन पैदा ही नहीं हुआ। उस ग्रन्थकार का कथन है कि नेपोलियन के नाम से लोगों ने एक फ़र्ज़ी कहानी बनाली है यथार्थ में न तो नेपोलियन पैदा हुआ और न उसने फ्रांस देश का राज्य किया। पाठक! आप को यह पढ़ कर आश्चर्य अवश्य होगा परन्तु यह उन्ही यूरोपियन लोगों की अटकल है जो हमारे देश की प्राचीन पुस्तकों पर यूरोप में बैठ कर या कुछ देशों में भ्रमण कर अपनी अटकल का परिचय एक दो छोटी मोटी पुस्तकें लिख कर देते हैं। उन्ही पुस्तकों को देख कर बहुतों को भ्रम होता है परन्तु वे अपनी प्राचीन पुस्तकों को पढ़ और मनन कर के अपने भ्रम को मिटाने का उद्योग नहीं करते वे लोग तो उन्हीं की बातों को मान कर अपनी प्राचीन पुस्तकों पर से श्रद्धा बुद्धि खो बैठते हैं॥

रावण का बौद्ध धर्म के साथ क्या सम्बन्ध था यहां पर हम उसकी कुछ विवेचना करना चाहते है। "लंकावतार सूत्र" नामक एक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ है। इस ग्रंथ में महात्मा बुद्ध ने जो उपदेश रावण को दिये हैं उसका विस्तार पूर्वक विवरण है। लंकाधिपति रावण बौद्ध धर्म की दीक्षा पाकर किस प्रकार और कैसा धार्मिक हुआ इसका उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है। हम कुछ संक्षिप्त विवरण इस पुस्तक का नीचे देते हैं। एक समय भगवान् बुद्ध समुद्र के किनारे लंका नगरी में मलया गिरि के ऊपर विराजमान थे। यह नगर नाना प्रकार के फल फूल, लता वृक्ष और विविध भांति के रत्नों से भूषित था। भगवान् बुद्ध की सेवा मे वहां पर एक भिक्षुसंघ भी उपस्थित था। लंकाधिपति दशानन, शुक और सारन नामक दो

सेवकों के साथ भगवान् बुद्ध के पास आया। उसने अत्यन्त प्रेम और भक्ति पूर्वक उन से यह निवेदन किया कि—

"मैं आप की सेवा में बड़े बिनीति भाव से प्रार्थना करता हूं कि आप कृपा पूर्वक लंका नगरी में चलिये देवता और मनुष्यों के सुख के लिये मेरा जीवन दीर्घ हो ऐसा मुझे आप आशीर्वाद दीजिए॥

हे नाथ! आप मुझे इस समय चित्त और स्वभाव के नम्र करने के निमित्त विधि सकृत, विरुद्ध मत हीन और निर्मल धर्म नीति का उपदेश प्रदान कीजिये। हे मुने! आप लंका नगरी में चल कर मुझे निर्वाण धर्म का उपदेश दीजिये। इस लंका नगरी में पहले पहले बुद्ध और उनकी सन्तान निवास करती थी अतएव हे नाथ! इस स्थान पर आप धर्म का उपदेश दीजिए। बहुरूप धारी राक्षस गण आप के मुख से धर्मोपदेश श्रवण करने के उत्सुक हैं॥

मैं दशानन राक्षेन्द्र रावण आप की सेवा में उपस्थित हूं। अतएव हे प्रभो! लंका में चल कर मुझे और अन्य पुर बासियों को अनुग्रहीत कीजिए। लंकापुरी विद्या रत्न से विभूषित है; इसके समस्त पर्वत शीतल और रमणीय हैं अतएव हे भगवन् राग द्वेषविमुक्त, प्रत्याहन गति चिन्तक! कृपा कर के लंका पुरी चल कर कुछ दिन निवास कीजिए। राक्षसों में श्रेष्ठ कुम्भ करण आप के द्वारा धर्म सुनने की इच्छा रखता है इसलिये हे मुने! हम सबों पर कृपा करके निज पुत्रों के सहित आप को लंका पुरी में चलना चाहिए॥

मैं कुछ लोगों और जिन लोगों का आज्ञा कारी सेवक हूं। हे मुने! मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे मैं आप को न दे सकूं। मेरे ऊपर आप अनुग्रह कीजिये" त्रिलोकेश्वर भगवान् बुद्ध ने लंकाधिपति की विनय को सुन कर लंका पुरी में जाना स्वीकार किया। रथ के ऊपर चढ़ कर, अनेक निज पुत्रों के सहित रावण के साथ भगवान् बुद्ध लंका पुरी में गए। वहां आकर रावण व अन्य नगर बासियों को धर्मोपदेश दिया॥

रावण ने प्रश्न किया कि भगवन् धर्म! और अधर्म किसे कहते हैं? जीव धर्म और अधर्म से किस प्रकार पार पा सकते हैं। मैंने आप के पहले अनेक बुद्धों से यही प्रश्न किया परन्तु उनके उत्तरों से मेरा संतोष नहीं हुआ। अब आप कृपा करके मेरा समाधान कीजिए। भगवान बुद्ध देव ने धर्माधर्म की पूर्ण व्याख्या करके रावण का समाधान किया॥

इसी प्रकार रावण ने भगवान् बुद्ध देव से १०८ प्रश्न किये और इन्हीं प्रश्नों का उत्तर व्याख्या सहित इस पुस्तक में है। इन १०८ प्रश्नों में से कुछ हम नीचे देते हैं जिससे पाठकों को ज्ञान हो जावे कि ये प्रश्न किस प्रकार के हैं॥

(१) तर्क किस प्रकार करना चाहिए?
(२) भ्रान्ति किस प्रकार उत्पन्न होती है?
(३) निज पुत्र किसे कहते हैं?
(४) जीवन मुक्त पुरुष का परिणाम क्या है?
(५) संसारिक बन्धनों में बंधे हुए लोग किस प्रकार मुक्ति लाभ कर सकते हैं?
(६) ध्यान किसे कहते हैं? इत्यादि, इत्यादि!

पाठक गण! हम ने आप के सामने "लंका वतार सूत्र" का संक्षेप विवरण उपस्थित कर दिया। अब जो जो बातें इस में विचारणीय हैं उस विषय का निवेदन आप की सेवा में करते हैं॥

हमें इस ग्रन्थ के विषय में कुछ नहीं कहना है। कारण यह कि बौद्ध धर्म ग्रन्थ अब तक जितने हमें देखने को प्राप्त हुए उन से यह बात स्पष्ट है कि उनमें सामाजिक नीति और व्यवहारिक ज्ञान पर अधिक ज़ोर दिया गया है। जब तक मनुष्य की बाहिरी दशा ठीक नहीं होती तब तक आभ्यन्तरिक दशा ठीक नहीं रह सकती। आडम्बर

रहित रहने से ही दोनों प्रकार की दशायें सुधरती हैं; यह बौद्ध धर्म का एक स्थूल मत है। अतएव इस पुस्तक में जिन जिन बातों की विवेचना की गई है इस विषय पर हमें कुछ भी नहीं कहना है। हमें सब से बड़ा सन्देह इस विषय में यह है कि रावण और बौद्ध धर्म का सम्बन्ध कैसा? बाल्मीकि कवि कृत रामयण पर से रावण के जीवन का सच्चा हाल मालूम होता है और अब तक बड़े बड़े विद्वान् इसकी पुष्टि करते आए हैं। बौद्ध धर्म को महात्मा गौतम ने चलाया इसको सब लोग जानते हैं। अंगरेज़ी इतिहास लेखकों के अनुसार गौतम बुद्ध का जन्म ईसा से ५५९ या ४४९ वर्ष पूर्व और मृत्यु ४९९ या ३६९ वर्ष ईसा से पूर्व हुई। (समय के सम्बन्ध में लोगों का मत भेद होने से ५५९ व ४४९ दोनों दे दिये गये हैं।) और रामायण का समय भी अंगरेज़ी इतिहासकारों के अनुसार ही तीन हज़ार तीन सौ वर्ष साबित होता है। इस हिसाब से रावण का ज़माना गौतम बुद्ध से क़रीब क़रीब आठ सौ वर्ष पहले का है फिर न मालूम 'लंकावतार सूत्र' की रावण के समय में कहां से सृष्टि हुई। बौद्ध धर्म लंका में पहले पहल कब गया; अब इसकी विवेचना हम करना चाहते हैं। कनिंगहम साहब ने अपनी पुस्तक Bhilsa Topes में दीप वंश बौद्ध धर्म की पुस्तकों के आधार पर से लिखा है कि महाराजा अशोक के ज़मीन में जब बौद्ध धर्म की एक महा सभा हुई तब उस में धर्मोपदेश के लिए देश देशान्तर को उपदेशक भेजना निश्चय हुआ। उसी निश्चय के अनुसार महाराज अशोक ने अपने विरक्त पुत्र मेहक को ईसा से २४२ वर्ष पूर्व भेजा। उस समय लंका में तिष्य नामक राजा राज्य करता था। सब से पहले उसी ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की। इस हिसाब से भी रावण के समय में बौद्ध धर्म का वहां जाना पाया नहीं जाता। इस पुस्तक के रचयिता ने पुस्तक के महत्व बढ़ाने के लिये इस पुस्तक का सम्बन्ध लंकाधिपति रावण से जोड़ दिया है। जब बौद्ध

धर्म का अधिक ज़ोर था उस समय हमारे हिन्दू धर्म ग्रन्थों में भी बड़ों के नाम से कुछ रचना की गई हो तो क्या आश्चर्य है? कहां रावण का राज्य काल और कहां बौद्ध धर्म।

'लंकावतार सूत्र, की अवतारणा कब हुई अब इसकी विवेचना करना बाक़ी है। बौद्ध मतावलम्बियों का तो यह विश्वास है कि ईसा से पूर्व ६ टी शताब्दी में जब भगवान् बुद्ध का अवतार हुआ था उसी समय उन्हों ने रावण को उपदेश दिया और उसी समय इस ग्रन्थ की रचना हुई। परन्तु हम ऊपर लिख चुके हैं कि रावण और महात्मा बुद्ध के समय में आठ सौ वर्ष का अन्तर हैं। ईसा की सातवीं शताब्दी के आरम्भ में चीन देश के प्रसिद्ध प्रवासी हुएनसांग ने भारत और लंका में आकर नाना स्थानों के दर्शन किए उसने अपनी प्रवास वर्णन पुस्तक में इस ग्रन्थ का भी विवरण दिया है। उसने इस ग्रन्थ का हाल लिखा है कि चीन देश के इतिहास पर से मालूम होता है कि इसका सब से पहले अनुवाद चीनी भाषा में ४४३ ईस्वी में हुआ। इस अनुवाद को गुणभद्र पण्डित ने किया था। इसी पुस्तक का चीनी भाषा में दूसरा अनुवाद बौद्ध रुचि ने ५१३ ईस्वी में और शिक्षानन्द ने ७०४ ईस्वी में किया। इस से ज्ञात होता है कि इसकी अवतारणा ईसा से १०० वर्ष पहले या २०० वर्ष के बाद हुई क्योंकि बौद्ध धर्म लंका में ईसा से २४२ वर्ष पूर्व पहले पहल गया और इस पुस्तक का पहला अनुवाद ४४३ ईस्वी में हुआ। इस पर से स्पष्ट है कि इसी समय के भीतर यह पुस्तक रची गई।

८ वीं शताब्दी के अन्त में शंकराचार्य ने सर्व दर्शन संग्रह नाम की पुस्तक में इस पुस्तक का उल्लेख किया है १४ वीं शताब्दी में माधवाचार्य ने इस पुस्तक का खंडन किया है। १२ वीं शताब्दी में उदयनाचार्य ने आत्म तत्व विवेक अथवा बौद्ध धिक्कार नामक ग्रन्थ रचा। उस में भी इस ग्रन्थ की उन्हों ने पूरी पूरी समालोचना की है।

ऐसे ऐसे बड़े बिद्वानों ने इस पुस्तक की समालोचना और खंडन

किया है इसी से ज़ाहिर होता है कि यह भी बौद्ध फ़िलासोफ़ी एक बढ़िया किताब है। इस पुस्तक में प्रश्नोत्तर के नोट पर दर्शन विज्ञान, गणित, धर्म, नीति, राज नीति, समाज नीति इत्यादि सब विषयों का निश्चय किया गया है। यद्यपि इस पुस्तक पर से रावण के समय का परिचय मिलना तो कठिन है परन्तु हां आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व की राज नीति, समाज नीति और धर्म नीति का बहुत कुछ पता लगता है॥

यदि पाठकों में से कोई महाशय इस विषय में कुछ अधिक जानते हों तो वे इसी पत्र द्वारा इस पुस्तक का वृतान्त प्रगट करें॥

सूर्य कुमार वर्मा

भाषा कैसी होनी चाहिये।

इन दिनों भाषा के सम्बन्ध में लेखकों के बीच बहुत कुछ विचार और भिन्न २ मत हो रहा है इसी से हम अपने एक प्राचीन लेख को, यहां पुनः उद्धृत करते हैं॥

हम समझते हैं सर्व साधारण का कुछ ऐसा मत है कि हिन्दी के बारे में जो कोई कुछ लिखा चाहैं उनका यह मुख्य कर्तव्य है कि उस पुराने खुर्राट झगड़े को पहले तै कर लें जो हिन्दी, हिंदुसतानी, या बी-उर्दू के बीच उठ रहा है। स्पष्ट है कि हिन्दी और उर्दू का कोरा लक्षण दे कोई कृतकार्य और सत्य संकल्प न हो सका इसलिये भाषाओं का भेद दर्शक लक्षण लिखने का उद्यम छोड़ हम उनके बोलने वाले कौन और किस ढंग के लोग हैं इसपर ध्यान देते हैं॥

आप जो भाषा बोलेंगे वह किसी न किसी सांचे में ढली होगी। तो यह कैसी हो और किस सांचे में ढले इसका तै करना अत्यन्त आवश्यक है लोग कहेंगे इसका ढलना अधिकतर कुल और जाति से

सम्बन्ध रखता है अर्थात् एक ब्राह्मण का लड़का कभी संभव नहीं कि नित्य बोल चाल में "खाकसार को क्या हुक्म होता है" इत्यादि के ढंग की फारसी मिली हुई उर्दू बोले। न यही संभव है कि कोई मुसलमान चाहो वह संस्कृत का बड़ा विद्वान् क्यों न हो काशी के पण्डितों के ढंग की भाषा बोलै-पर थोड़ा ही सोचने से यह बात खुल जायगी कि कुल जाति या मज़हब का बहुत कम असर भाषा पर पहुंच सक्ता है। इन मुसलमानों ही की भाषा को लीजिये हम समझते हैं वह आदमी निस्संदेह मुसलमान है जो महम्मद को खुदा का रसूल मानता हो नित्य नमाज़ पढ़ता हो रोज़े रहता हो अर्थात् धर्म सम्बन्दी सबूत जहाँ तक काम दे सकता है वहां तक वह अवश्य मुसल्मान है-अच्छा तो अब लखनऊ के एक मुसल्मान को लीजिये और उसकी भाषा पर ध्यान दीजिये देखिये कैसी लच्छेदार शीन काफ़ से जड़ी हुई फ़सीह उर्दू बोलता है। तब ढाका और मुर्शिदाबाद के प्रान्त के एक बङ्गाली मुसल्मान को लीजिये और उसकी भाषा को भी कान खोल कर सुनिये सुनते ही चट आप कह उठैंगे यह तो न फारसी है न उर्दू बल्कि शुद्ध बंगला है। कलकत्ते की चीना बाज़ार में हिंदुस्तानियों के घर के तोतों को भी कभी २ चीनियों की बोलियों का अनुकरण "च्यं २ म्यं २" करते सुना है तब आदमियों की कौन कहे इसलिये यही बात ध्यान में आती है कि कुल जाति या धर्म नहीं बरन जैसे लोगों में कोई रहेगा वैसी ही उसकी भाषा अदल बदल कर हो जायगी या कभी २ अंगरेजी संस्कृत या फारसी आदि भाषाओं का प्रबल अभ्यास भी भाषा पर असर करता है-जिस भाषा का जो अधिक प्रबल अनुशीलन किये रहेगा वही भाषा अपने मामूली बोल चाल में बोलैगा। अर्थात् पहले समाज का असर भाषा पर होता है फिर शिक्षा का। पर भाषा का पूरा २ ज़ोर देखने के लिये उन लोगों पर ध्यान दीजिये जो एक ढंग के "शून्य भीति" हैं अर्थात् जिन पर किसी तरह की शिक्षा मात्र ने अपना रंग नहीं जमाया

है और जो घर में तथा घर के बाहर छोटे बड़े सब से एक तार की अपनी सहज भाषा बोलते हैं। सच पूछिये तो ऐसी भाषा से बढ़ कर संसार में कोई दूसरी मीठी भाषा नहीं हो सकती इस कारण अगर ठेठ हिन्दी शब्दों की आप को खोज है तो गत काल के या वर्त्तमान समय की नपी जोखी प्रायः एक ही ढर्रे पर चलने वाली कबियों की बाणी से लेकर सहस्रों धारा से चलती हुई सजीवग्रामीण भाषा को देखिये-यदि आप यह कहैं कि शिक्षा के अभाव से ऐसे लोग असभ्य या अश्लील शब्द अपनी बोल चाल में बहुत भरते हैं तो साथ ही इसके यह भी सोचना चाहिये कि कितने हज़ारों लाखों शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिन के पुष्ट भाव या अर्थगौरव को देख चकित ही हो जाना पड़ता है। कदाचित् आप को यह सन्देह हो कि ग्रामीण भाषा से हमारा अभिप्राय निरे अपढ़ और नीच लोगों की बोल चाल से है तो इस प्रश्न की मीमांसा के उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि यदि पाठकजन टुक ध्यान दे सोचैंगे तो यह बात उनके मन में सहज ही आ सकती है कि जिसको वे मातृ भाषा कहते हैं वह उससे भिन्न है जिसे वह घर के बाहर बोलते हैं अर्थात् आपस के बोल चाल की भाषा यद्यपि प्रिय से प्रिय मित्र के साथ प्रेमालाप में काम आती हो फिर भी वह भाषा एक तरह की और बनावट से भरी हुई जंचती है-तात्पर्य यह कि जैसा कुछ सरल भाव मिठास मातृ भाषा में भरा है वह बाहर की सभ्य या साधु भाषा में आही नहीं सकता। इस सभ्य भाषा से हमारा प्रयोजन कोरी उर्दू ही से नहीं है किन्तु उससे है जिसका नाम (Provincial dialects) भिन्न भिन्न स्थानों की भाषा है जो लोगों के घर के भीतर बोली जाती है और जिस भाषा का बर्ताव नौकर चाकर के साथ किया जाता है-जिसकी सहज गति या प्रबाह होने के कारण जिसमें एक बिचित्र लालित्य माधुर्य या कोमलता आ जाती है जिसमें अब तक हज़ारों लाखों अति पुष्ट अर्थ के द्योतक हिन्दी शब्द भरे हैं और जो

दुर्भाग्य से मनुष्यों की सभ्य मंडली से निकाल कर अलग फेंक दिये गये हैं-इस अन्याय का क्या कारण है? कारण केवल यही जान पड़ता है कि हम लोगों के बीच बिना बोलाये ही एक पाहुना आ घुसा है और उसी का नाम उर्दू है-माना कि स्त्रियों तथा दास दासी इत्यादिकों की भाषा सदा से सहज और "प्र कृतिक,, होती चली आई है पर समाज के दो भाग होते हैं एक पढ़े हुओं की भाषा दूसरे कम पढ़े या अपढ़ लोगों की भाषा इन दोनों में आज कल विचित्र भेद दिखलाई देता है। पूर्ब काल में भेद था पर इस तरह का नहीं था अगर बेपढ़े लोग प्राकृती बोलते थे तो इसको भी संस्कृत का बच्चा ही समझना चाहिये॥

इन दिनों कोई २ कायस्थ महाशय कुछ लोगों से तो अपने जन्म भूमि की भाषा बोलते हैं पर बाहर दूसरे लोगों से कुछ और ही चीज़ बोलते हैं और एक विचित्र भद्दे फारसी शब्द मिली उर्दू बोलते हैं जिसपर उन लोगों से जिनकी निज की भाषा उर्दू है बिना हंसे नहीं रहा जाता। ऐसों के सम्बन्ध में यह पुरानी कहावत सुघटित होती है। "कौवा चला हंस की चाल अपनी भी भूल गया" "आप जो पूजैं ग्वेहरा भूत पूजनी जोय-एकै घर में दो मता कुशल कहां से होय,,। जो बात हमारे कोई २ कायस्थ महाशयों के सम्बन्ध में ठीक है वह थोड़ा २ सब पर घटती है॥

फिर इस बात पर भी तो ध्यान देना चाहिये कि समाज की समाज एक विचित्र रास्ते पर चले इसका कोई बड़ा भारी ही कारण होना चाहिये। इस बड़े कारण को खोजने के लिए आप को दूर न जाना होगा बहुत दिन की बात नहीं है कि पढ़े लिखे लोगों के समाज में जो ठेठ हिन्दी शब्द बोलता था वह गंवार और देहाती का खिताब पाता था अधिक नही २५ वर्ष पहले के हिन्दी के इतिहास पर ध्यान दीजिये हरिश्चन्द्र आदि के पूर्ब हिन्दी की क्या दशा थी

और अब उन्हों ने बहुतसा वित्त और मानसिक शक्ति को धूर में मिलाय बड़े यत्न के उपरांत मार २ कर लोगों को हिन्दी के पढ़ने का शौक़ दिलाया तब क्या दशा थी और अब क्या है सच पूछिये तो इस थोड़े से समय में हिन्दी की कुछ कम विजय नहीं हुई। वेही सब शब्द जो किसी समय गंवारी भाषा समझे गये थे सो अब काल चक्र के हेर फेर से अधिकारशाली पढ़े लिखे लोगों के बर्ताव में आने लगे वरन ठेठ से ठेठ हिन्दी शब्दों की खोज लोगों को है और वह ठेठ हिन्दी हमारे ग्रामीण जनोंहो के कंठ का आभरण है–सच है जिस पत्थर को कारीगरों ने बेकाम जान फेंक दिया वही कोने का सिरा हुआ–और भी हम शब्दों को ठीक सिक्कं की तरह मानते हैं जैसा बाज़ार के रुपये आदि का कुछ मोल होता है वैसेही मानसिक वाणिज्य अर्थात् एक मनुष्य के हृद्गत भाव को दूसरे के मन में पैठाना शब्दों ही के द्वारा हो सक्ता है यदि ऐसा है तो सिक्के घिस भी तो जाते हैं मुसल्मानों के समय के सिक्के अनोखी वस्तु को जोगे कर रखने वालों ही के सन्दूक में मिलैंगे बाज़ार में नहीं चलते प्रयोजन यह कि ठेठ हिन्दी के शब्द जो हम लोगों के काम में लाये जाते हैं सो इसके बदले की गंवार पने की बू उन से आवै एक विचित्र लहलहापन और पुष्टता उनमें भरी हुई पाई जाती है और आप निश्चय जानिये बहुत जल्द ऐसे ही शब्दों की पूरी विजय होगी।

———

जी चाहै तो इसे भी पढ़ लीजिये।

समय से पढ़ने वालों की सेवा में नहीं पहुंचते इसलिए हम बहुत दिनों से बदनाम हैं–अस्तु इस कलंक को हम अपने ऊपर से अब हटाते हैं और आगे से आकार में २४ पृष्ठ प्रतिमास समय से रसिकों के मन रमाने को पहुंच सक्ते हैं किन्तु अनुकूल पढ़ने वाले यदि मिलैं और समय से मूल्य देने वालों का नम्बर ५० के लगभग और

हो जाता—यह न समझिये कि खुराफात कूड़ा करकट केवल आप के वेस्ट वास्केट भरने के काम का वह रहेगा बरन लेख में माधुर्य और ओजस्विता पैदा करने का हमारा ज़िम्मा—पर कुसाइत के जन्में इस पत्र की कहां ऐसी किस्मत कि कोई भलाई की सूरत पैदा हो निज का प्रेस करने को दो वर्ष रटते २ हो गये किसी के मन में न समाना १००) भी अब तक इस भीख में न आया तो यह अभिलषित कब पूरा हो सक्ता है—अन्त को यही निश्चय होता है कि घिसलते हुये चलना हमारे लिये Doomed लिख गया है वही होगा और कण्ठ गत प्राण तक कदाचित् एडिटर बनने का मयूर न पुरैगा—

स्वीकार।

निम्न लिखित महाशयों को धन्यवाद है जिन्हों ने पत्र के सहायार्थ हमे भेजा है पं-किशोरी लाल गोस्वामी बनारस ५)
बाबू-बैजनाथ कोसी ज़िलह मथुरा। ५)

पुस्तक स्वीकार।

धम्मपद।

धम्मपद अर्थात् बौद्ध धर्म उपदेश रत्न माला—ग्वालियर निवासी ठाकुर सूर्य कुमार वर्मा रचित और काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित—मूल्य ।-) सर्व श्रेष्ठ बौद्ध धर्म क्यों माना गया इसकी भरपूर टटोल इस पुस्तक के पढ़ने से हो जाती है—चोखे से चोखे उपदेश जैसा बुद्ध देवने दिया है वह और किसी दूसरे धर्म में मिलना दुर्घट है—बाबू सूर्य कुमार वर्मा ने इस पुस्तक का अनुवाद कर बड़ा उपकार किया—

लिपिबोध।

कानपुर निवासी पं-गौरी शंकर भट्ट द्वारा संपादित पहिला भाग आकृति खण्ड अभी छापा है १।-) भेज देने से यह खण्ड और इसके दो

खण्ड और छप जाने के उपरान्त मूल्य देने वाले के पास पहुंच जांयगे स्कूलों में जो लड़के ड्राइंग सीखते हैं उनके लिये यह पुस्तक बहुत उत्तम है केवल आकृति खंड का मूल्य ॥=) है-

नागरी हितैषिणी त्रय मासिक पत्रिका।

आरा नागरी प्रचारिणी सभा से यह पत्रिका प्रकाशित होती है विषय इसमे उत्तम और पढ़ने योग्य रहते हैं ईश्वर इस पत्रिका की उन्नति करे-

---

नाहं निन्दे नच स्तौमि स्वभावविषमं जनम्।

कैसा अच्छा सिद्धान्त या विचार है जब सिरजन हार उस बड़े खालिक की खिलकत या रचना गुण कर्म के विभाग से एक तरह की नहीं है तब किसे बुरा कहैं किसे भला-सच है "तुम ईर घाट हम मीर घाट" "किसी को बैगन बावले किसी को बैगन पथ्य" जिस बात को तुम बुरा ऐगुण और अधर्म मानते हो हम उसी को उत्तम, गुणदायक, उचित, न्याय, अवश्य कर्तव्य और धर्म समझते हैं-जिसे तुम हलाहल विष मानते हो उसी को हम जीवन मूल अमृत-तुम कहते हो परंपरागत बाल्य बिवाह न करने से बड़ी हानि है लड़के आवारा हो बिगड़ जांयगे दूसरे यह कि बाप मा दूध मुहे छोटे २ बालक बालिकाओं को ब्याह आंख का सुख देख जीवन सुफल करते हैं-पानी भरी खाल आज क्या है कल न जानिये क्या हो गृहस्थी में जो काम निपट जाय उसी ओर से सुचित्ती हो-फिर लड़की बड़ी हो गई ब्याही न गई तो पुरखे नरक में जांयगे धर्म में हानि होगी-जिसके लड़का है सो सोंचता है हमारे चार लड़के हैं मानो चार इलाके हैं ब्याहेंगे दहेज पावेंगे घर भर जायगा दुख दरिद्र दूर होगा-जिसके चार लड़की है सो समझता है चार महाब्रह्म हत्या है ब्याह कर किसी तरह उद्धार पावें बोझ हलका हो-हम कहते हैं इस्से बढ़ कर समाज को हानि पहुंचाने वाली

कोई दूसरी बात ही नहीं है हमे ऐसी गिरी दशा में आजाने का यही कुरीति मूल कारण हुई है-लड़के जब तक उन्में Self supporting capacity आत्म पोषण शक्ति न आवे तब तक न व्याहें जांय उनके वीर्य रक्षा और चरित्र रक्षा की फ़िक्रि की जाय-माना किये दोनों बातें न हो सकेंगी और १०० में ९५ आवारा हो जांयगे तो ५ जो बचैंगे वही उस ९५ की घटी पूरी देंगे और देश के कल्याण के अंकुर होंगे-आप मानते हैं कर्मचारियों की हां में हां और उनकी खुशामद से हमारा सब भांति उपकार है हम समझते हैं ऐसा करना हमारी राज नैतिक कमज़ोरी ज़ाहिर करता है और विदेशियों की नज़र में यहां वाले हकीर और बेकदर जंचते हैं तुम कहते हो सब बन्धन तोड़ फोड़ एक ही फलांग में उछल कर हम आसमान के सातवें तबक पर जा बैठें हम कहते हैं नहीं धीरज धरे धीरे २ सीढ़ी २ चढ़ते चलो अपने देश बान्धव जिन से हम इतना हिल मिल गये हैं कि रुधिर मांस उनका तथा हमारा एक हो रहा है उनको अपने साथ लिये रहो "तुषेणापि परिभ्रष्टा नंप्ररोहन्ति तन्दुला" भूसी कोई चीज़ नहीं है किन्तु धान जब भूसी से अलग हो चावल कर लिया जाता है तब उसे बोओ तो नहीं जामता-ऐसा ही हम अपनी समाज से अलग हो आगे बढ़ जाने की जो कुछ चेष्टा करैं सब निष्फल है एक चना भाड़ नहीं फोड़ता किन्तु समुदाय में शक्ति होती है-तुम मानते हो हम बुद्धि के सागर हैं कुल के उजागर हैं हमारे कर्तव्य हमारे मन्तव्य में कहीं से अपूर्णता नहीं है तब हम को किसी की बात मान अपने सिद्धान्तों को मोड़ लेना जान बूझ अपनी हलकाई कराना और हेठापन है-हम कहते हैं हम क्या हमारे सात पुरखा कूढ़ दिमाग बेअक़िली के जहाज़ होते आये हमारे जितने मन्तव्य जितने काम सबों में त्रुटि हैं तब किस भरोसे हम अपना निज का कोई सिद्धान्त क़ायम करैं; इसलिये यही उचित है कि हम जहां जिसमें जो कुछ तत्व देखैं उसे स्वीकार कर लें और किस्की कहैं "बालादपि सुभाषितम्" ग्रहण करने योग्य है-आप कहते हो हम आर्य हैं मनुष्य मात्र

में सर्व श्रेष्ठ हैं बाप ने घी खाया हांथ हमारा सूंघ लो वाली कहावत के भांत प्राचीन समय में यावत् भूमण्डल के लोगों ने सभ्यता विद्या आचार इत्यादि के तत्त्व यहीं से सीखा; यहीं से सब देशों में सभ्यता फैली यहीं से यूनान और मिस्र आदि देश विद्या और कला सीख मनुष्य बने-स्वर्ग में देवता भी सोचते हैं कि हम भारत की कर्म भूमि में जन्म लें तो अच्छा-पर हमे तो इस पाप भूमि से ऐसी घिन है कि अब जन्म लें तो सहारा के रेगिस्तान में जा पैदा हों पर इस पापिष्ट मृतक भूमि में गर्दखोर गुलाम दर गुलाम न जन्मैं-हिन्दू शास्त्र के नुअसार जन्म तो लेना ही पड़ेगा तब कहां हमारे ऐसे उत्कृष्ट पुण्य कि वीर प्रसविनी जपान सरीखी धरती में जा उतरैं-इस जन्म में जो पाप कर रक्खा है उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा क्योंकि सिद्धान्त है "प्रारब्धस्य भोगादेवक्षयः, तो उसी सहारा के रेगिस्तान में स्वच्छन्दता के साथ भोगैं यहां पैदा हो क्यों कहर २ के प्राण छोड़ैं-पुत्र जन्म में लोग खुशी मनाते हैं शहनाई बजवाते हैं हमें दुःख होता है कि एक नया गुलाम और पैदा हुआ-इत्यादि ऐसी जली कटी बातों को लिख उफनाने से क्या लाभ शान्त चित्त हो जो आ पड़े उसे भोगते हुये न बुरे को बुरा कहो न भले को भला-सच है जो लोग या जो समाज जिस ढांचे पर ढल गई वह बदलैगी नहीं तब मन ही मन कुढ़ते हुये हम क्यों दुखी हों-

---

सदा दिवाली तेहि घर जेहि घर गेहूं होय ।

तो निश्चय हुआ कि दिवाली कोई चीज़ नहीं है किन्तु गेहूं का होनाही दिवाली है—जब पेट के लिये तरस रहे हैं; रूखा सूखा खाकर पेट भरता रहे इतना ही बहुत है; तब गेहूं की कौन कहे जो संपन्न और अमीरों का भोजन है—अमीरी ठाट बाट शान शौक़त के जहां और बहुत से जुज़ है वहां अमीरों के दस्तरखान में उमदा से

उनदा स्वादिष्ट और मधुर भोजन का प्रधान अंग गेहूं समझा जाता है—दूसरे यह कि दिवाली हम लोगों में एक तेहवार लक्ष्मी के पूजन के उत्सव का होता है घर की सफाई दीपमालिका की जगमगाहट सब इसी ख्याल से किये जाते हैं कि सब ओर लक्ष्मी का प्रकाश और धन का उद्गार प्रकट हो सो लक्ष्मी देशान्तरों में जाने के लिये अनुक्षण हम से बिदाई मांग रही हैं—सरस्वती तो पहले ही प्रयाण के लिये बीड़ा उठाये थीं नई २ विद्या और कलाओं से उन्हें रोक रखने को लोग हर तरह पर यत्न कर रहे हैं अब लक्ष्मी भी उन्हीं का अनुकरण करने को उद्यत हैं सरस्वती अपनी सरल सात्विक प्रकृति से कदाचित् मान गई होतीं रजोगुण में पगी हठीली स्वभाव वाली लक्ष्मी तो कभी मानने ही की नहीं हैं—दूसरे किस्मत आज़माइश के ढंग पर दिवाली की रात लोग जुआ खेलते हैं जो एक सगुन के तरह है हारे तो साल भर उनके हरएक काम में हार ही हार होती रहती है जो जो जीते तो जीत यहाँ हार के सिवाय जीत जानते ही नहीं—राज द्वार में ग़ैरों के मुक़ाबिले हम हारें—बनिज ब्योपार में हमारी हार—नई २ तरक्की उद्यम उत्साह अध्यवसाय में सब के पीछे हटे हुये हई हैं यह भी एक हार है तो निश्चय हुआ कि भारत के वे दिन अब गये जब दीवाली को पूर्ण सार्थकता थी अब तो—

"गतः स कालो यत्रास्ते मुक्तानां जन्म शुक्तिषु।
उदम्बर फलेनापि स्पृहयामो ऽधुना वयम्" ॥

——:o:——

हिन्दी प्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै ।
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहि टरै ॥
सूझै बिबेक बिचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २६ | सं० ११-१२ } प्रयाग { नवम्बर दिसंबर, सन् १९०४ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार
पं० रघुनाथ सहांय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा असमर्थों से अग्रिम १॥≡)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) —०*०— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज ३)

—:००:—

सूचना।

प्रतिक्षण प्लेग इत्यादि अनेक बिघ्नकारी आधि व्याधि के रहते भी ईश्वर की दया से हमारा यह वर्ष भी समाप्त हो गया—अब पढ़ने वालों से सविनय निवेदन है कि वे अपना मूल्य भेज दें जिसमें बार २ के तकाज़े से हम बचें—इसी झंझट के बचाने को आगे से हम यह नियम करते हैं कि जो अग्रिम मूल्य भेजदेंगे उन्ही की सेवा में पत्र जाया करेगा—



हिन्दीप्रदीप

जि० २६ } प्रयाग { नवम्बर, दिसंबर,
सं० ११-१२ सन् १६०४ ई०

परंपरा ।

परंपरा, गतानुगतिक, भेड़िया धसान, आदि कई एक मुहाबिरे इसके सम्बन्ध में प्रयोग किये जाते हैं अब सोचन चाहिये यह परंपरा है क्या बला—यह किसी श्रुतिका एक टुकड़ा है ? आप्तवाक्य है ? आर्षक्रम है ? धर्मशास्त्र या स्मृतिकारों के स्मृति का सिद्धान्त है ? नहीं यह यावत् श्रुति स्मृति धर्मशास्त्र मन्वत्रिबिष्णुहारीत आदि अठारहों स्मृतिकारों के दिमाग की चटनी या एसेन्स है—केवल इतना ही नहीं बरन बाबा वाक्यं प्रमाणम् का निचोड़ है—यद्यपि शुद्धं लोक बिरुद्धं महावाक्य के चरितार्थ

होने की प्रणाली है—जिसकी क्रमसे बंश परंपरागत अनुवृत्ति के आगे महामुनि पाणिनि के सूत्रों की अनुवृत्ति झक मारती है—जिसके उद्दण्ड शासन के आगे कड़े से कड़े सरकारी कानून जो नित्य बदला करते हैं ठहरने की हिम्मत नहीं कर सक्के—इस परंपरा की अनुवृत्ति को जैसा हमने अपनी लड़काई में देखा आज ६० बर्ष के उपरान्त भी वैसाही पाते हैं जव मात्र भी किसी तरह का हेर फेर उसमे न हुआ—देश की स्थिति में कितनी उलट पलट होगई कितने घराने राव से रंक और रंक के राव होगये किन्तु इस परंपरा के स्थायित्व में ज़रा फर्क न आया और कब से इसका प्रादुर्भाव है इसका पता लगाना हम क्या हमारे प्रपितामह के प्रपितामह की शक्ति के बाहर है—हिन्दुस्तान ऐसे गिरे देश का तो कहना ही क्या है कौनसी ऐसी स्वर्ग सदृश भूमि है कौन ऐसी सभ्याति सभ्य जाति है जहां इस परंपरा पिशाची की प्रतिष्ठा और गौरव नहीं है बड़े२ नामी देश हितैषी संशोधक और रिफार्मर सिर धुना किये इसके पीछे पड़ मर गये खपगये पर इस परंपरा के हटाने में कुछ असर न पहुंचा सके—लेक्चरारों का लेक्चर परंपरा के अनुकूल हुआ सर्वथा शिरोधार्य और माननीय है लेक्चर देने वाले ने ज़रा भी प्रतिकूल कहा कि नास्तिक बिधर्मी पापिष्ट भ्रम में पड़ा भटका हुआ आदि बौछारों की समाचारपत्र वाले झड़ी बांध देते हैं उस बेचारे का फिर कहीं ठिकाना नहीं लगता—देश में अब तक क्या हुआ आगे और क्या होगा पढ़े लिखों के मस्तिष्क में न जानिये क्या२ खिचड़ियां पक रही हैं तबदील के एक मात्र भक्त ये लोग जोश में भरे सब तरह की बातें सोंचा करते हैं किन्तु परंपरा के सामने एक भी नहीं चलती—इसी से कोई२ चतुर सयाने लेक्चर बाज़ नई सी नई ईजाद या कोई नई तबदील को भी परंपरा में प्रामसिद्ध कर समाज में सर्ब मान्य होजाते हैं—हम लोग बाल्य बिबाह के हटाने को कितना ही टांय२ किया करते हैं अनेक इसके दोष दिखाते हैं किन्तु परंपरा के क्रम के बिरुद्ध है इसलिये केवल

अरण्य रूदन सा होता है—कोई २ नव युवक जिन्हे बिधबा से व्यांह करने का खफ़ पैदा हो गया अपने मन की कर गुज़रते हैं पर पीछे बिरादरी से बाहर और समाज से निष्काशित हो किसी काम के नहीं रह जाते—एक जाति वालों का सह भोजन बहुधा लोग चाहते हैं यह इतना शास्त्र बिरुद्ध भी नहीं है किन्तु परंपरा से ऐसा नहीं होता आया किसी की हिम्मत या साहस नहीं होता कि इस बात में अगुआ बने—ब्याह शादी में गाली गाने की कुप्रथा सब लोग नापसन्द करते हैं गमी में महीनों और बरसों तक सियापा किसी को नहीं रुचता पर परंपरा से होता चला आया हटाये नहीं हटता जिसके रोकने को सुशिक्षित नौ जवान कितना ही कूद फांद मचाते हैं किन्तु घरकी पुरानी बुढ़िया ने जहां एक बार डांट के "दुर मुये" कह दिया तहां सब जोश उतर गया—इत्यादि कितनी कुरीतें परंपरा के आड़ में ऐसी बद्ध मूल हो गई हैं कि हटाये नहीं हटतीं तक़रीर और मन्तिक का दखल वहां होने ही नहीं पाता—अस्तु अन्त में फिर भी हम इस परंपरा को धन्यबाद देंगे सो इस लिये कि नई तालीम के प्रबाह के झोक में देश का देश इसी ताक में लगा हुआ है कि किस तरह हम जाति पांतिके झगड़ो से निकल भागें अपने मन की जो अभी छिप के करते हैं ज़ाहिरा करने लगें और आज़ाद हो खुल खेलैं—इस दशा में बचा खुचा हमारा हिन्दूपन चाहो इसे बुरा कहो या भला इसी परंपरा के सहाड़े पर टिक रहा है—जिन बैदिक ऋषियों का यह चलाया है उन्मे शुद्ध भाव रहा तो यह वृक्ष पुराना पड़ने पर भी एक बार फिर भी हरा भरा हो लहलहा उठैगा पर ऐसा कब होगा यह कौन जान सक्ता है "कालो ह्ययं निरवधि बिंपुला च पृथ्वी" ॥

शिक्षा की ओर गवर्नमेंट का अनुदार भाव।

हमारी गवर्नमेंट का उदार शासन माना गया है उसमें अनुदार भाव देख चित्त चकित हो क्षोभ में आता है और अनेक भली बुरी

कल्पनाओं को मन में अवकाश पाने का अवसर मिलता है-हम तो तभी अपना करम ठोंक बैठे थे जब सुनने में आया था कि युनिवरसिटी कमिशन बैठा है-जब २ किसी बात के लिये कमिशन बैठा है तब २ परिणाम में कुछ न कुछ हमारे प्रतिकूल ही गुल खिले हैं-अस्तु यह लाट करज़न महोदय के शासन का समय है जिनकी गूढ़ पालिसी पहचानना हम लोगों की सामर्थ्य के सर्वथा बाहर है-हम हिन्दुस्तानियों की भद्दी अकिल में यही आता है कि सरकार हमारे बालकों को अब उतनी उदार शिक्षा नहीं दिया चाहती जैसा अब तक उसने दिया है-नहीं तो इस तरह भांत २ की कैद फीस का हद्द से ज़्यादा बढ़ा देना इत्यादि का प्रयोजन ही क्या था-कितने लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि सरकार यही चाहती है कि हम बुद्धि वैभव में इस देश को उसी दशा में उतार लावें जिस दशा में हमने अपने शासन के प्रारंभ में पाया-पर हमको ऐसा समझने वालों की अकिल पर तर्स आता है-पहले तो हम यही आशा करते हैं कि कदाचित् ऐसा है नहीं और यदि है तो यह नितान्त भूल है कभी संभव न था कि इतना बड़ा देश इस तरक्की के ज़माने में सदा अन्धकार में पड़ा रहता जब इसके समीपवर्ती देश सभ्यता के छोर को पहुंच रहे हैं-यूरोप की कोई न कोई जाति फ्रेंच डच पोर्चुगीज़ डेन्स इत्यादि जैसा टीड़ी दल के समान यहां आ टूटे थे उस समय जो कोई इसे अपने हस्तगत करता वही यहां विद्या के प्रकाश से लोगों के नेत्र खोलता और अब नेत्र खुल जाने पर उसको फिर मूंद देने की चेष्टा अत्यन्त ओछापन है-कतिपय संकीर्ण हृदय कर्मचारियों का कदाचित् यह भाव हो कि ये पढ़ कर हमारी बराबरी करने लगे हैं अथवा ये अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि होने के कारण थोड़े दिनों में सुशिक्षा में कहीं हमारे आगे न बढ़ जांय इससे विद्या वृद्धि के स्रोत पर डांट लगा देना उचित है तो ऐसा सोचना या समझना भी निरी भूल है-एहसान फरामोशी तो यहां के लोगों

ने कभी सीखाही नहीं बल्कि थोड़ा ही उपकार में कृत कृत्य हो गुलाम तक बन जाते हैं शासन की इस कड़ाई में मुह जोह रहे हैं कि कोई ऐसा नया हाकिम आवे कि हीन न समझ अपने बराबर का उन्हे माने और उनकी बिनय प्रार्थना पर कान दे—रिपन सरीखे दो एक जो उन पर दया कर गये हैं तो हरि कीर्तन सा उन्हे सुमिर रहे हैं—आगे बढ़ने की कहो तो खेद है कि बिदेशियों के सम्पर्क से इन्मे अनेक दुर्गुण आ गये ऋषित्व का शुद्धाचरण अब बाकी न रहा नहीं ती कोई देश या जाति वाले इनके दिमाग के कूवत की बराबरी कभी कर सक्के थे—यह यहीं की पृथ्वी है जहां अन्य देश की धरती के मुकाबिले न जानिये कितने शुद्ध आचरण के आप्त श्रेष्ट पुरुष हो गये हैं और वे ही अपने तपो बल से ऋषि कहलाये—उन्हीं की सन्तान यह वर्तमान आर्य सन्तान कहां तक उनके दिमाग की कूवत का अनुकरण न करै—यदि वही उन ऋषियों का सा पवित्र आचरण इनका अब तक बना रहता तो बुद्धि के अंश में ये न जानिये क्या कर गुज़रते—कंपिटीशन में आगे ही बढ़े तो कौन सा अचरज हो गया—उचित था कि भेद बुद्धि छोड़ इनके लिये बराबर तरक्की का मैदान छोड़ दिया जाय और वैसी ही शिक्षा इनको भी दी जाती जैसा इंगलैंड आदि देश में सस्ती से सस्ती और बिना इतनी तरह की कैद के दी जा ती है तब अवश्यमेव कहा जाता कि अनुदार भाव नहीं है और गवर्नमेंट हम लोगों के अनेक धन्यवाद की पात्र होती—नहीं तो युनिवरसिटी सिसटेम जोमें अब परिवर्तन होने वाला है वह साफ २ यही कह रहा है कि हम उच्च शिक्षा से वंचित रहैं बरन साधारण शिक्षा में भी जहां तक हो सके कमी रहै शिक्षा के सम्वन्ध में हम लोगों की दशा अर्द्ध प्र स्फुटित कली के समान है—कली जैसा आधी फूटने पर तुषार आदि कई कारणों से ठिठुर कर रह जाती है अब उसे हम न निरी कली कह सक्के हैं न पूर्ण बिकसित फूलही वह है वैसाही हम इस समय हो रहे हैं—किसी

बिषय के पूर्ण पारंगत अभी तक हम लोगों में बहुत कम हैं हां अलबत्ता जैसा प्रवाह बिद्या का आरंभ में सरकार ने चलाया था उसका बेग न रोका जाता तो १०० में ७५ पूर्ण बिद्वान् हो देश का न जानिये कितना कल्याण करते—अभी तो १०० में ५ भी वैसे नहीं हैं जो हैं भी उनका मत अपढ़ समाज से मिलना नहीं परिणाम जिसका यही होता है कि सुशिक्षित भी अपने को दवाय अपढ़ों में जा मिलते हैं और कपटी मुनि का सा भेख धरे रहते हैं—भीतर से तो उनको अपढ़ समाज की किसी बात में श्रद्धा नहीं रहती पर ऊपर से हां में हां मिलाते हुये मिले न रहैं तो जांय कहां—जिन्हो ने "मारेलकरेज" काम में लाय अपने मन की कर बैठने का साहस किया वे समाज से दूर फेंक दिये गये न इधर के हुये न उधर के हमरी समाज नित्य २ जीर्ण जर्जजरित और छिन्न भिन्न हो रही है—पुरानी बातों में श्रद्धा और रुचि घटती जाती है नई बातों के चलाने का साहस किसी में नहीं आया—बिद्या का प्रवाह स्थिर भाव से कायम रहता तो देश यद्यपि धनहीन होता जाता है तथापि लोगों की मानसिक शक्तियां बिकाश पाय जिस एक बात की ओर सब लोग झुक पड़ते धन हीन होने पर भी बहुत कुछ कर गुज़रते सो इस ओर से भी हमे नैराश्य है तब देखैं आगे को हमारा क्या होनहार है—तालीम का हाल में जो ढंग हो गया था उसका यही प्रयोजन रहा कि असमर्थ तथा मध्यम श्रेणी वाले उत्तम शिक्षा न पासकें अब कदाचित् उत्तम श्रेणी वाले समर्थों पर भी इसका कुछ असर पड़े यह निश्चय है कि इससे हम लोगों की शिक्षा में भलाई की कम आशा है—

हमारे देश वालों की कभी उन्नति हो सकेगी?

यह सब कोई जानता है कि समस्त उन्नति का मूल बिद्या बीरता और व्यवसाय से सबन्ध रखता है और ये तीनों तभी प्रकर्ष गुण के उत्पादक

हो सक्के हैं जब हमारे देश की जनता का प्रत्येक समुदाय इसका यथोचित आदर करै – एकही बिद्वान् वा पंडित झटपट देश के देश को सुशिक्षित नहीं कर सक्का; न एकही मल्ल बिद्या बिशारद शूरबीर देश भर को सूरमाँ बनाय कायरपन उन्से दूर कर सक्का है; न एकही महान् उद्यमी पुरुष व्यापार के उन सूक्ष्म सूत्रों को बिना फैलाये समुदाय मात्र को व्यौपारी उद्यमी और साहसी बना सक्का है–बस निश्चय हुआ कि सर्व साधारण मे बिना प्रचार पाये कोई बात अपनी यथोचित उन्नति को नहीं पहुंचती–इस प्रसंग का उत्थान इस मूल पर हुआ है कि आज कल हमारे प्रान्त में कोई २ लोगों के आचरण मे देशोन्नति का उत्साह ऐसा चमक रहा है जैसा अंधेरी रात में बिजली की छटा जिस प्रकार घट पट आदि पदार्थों का ईषत् आभास कर बिलीन हो जाती है उसी प्रकार नूतन प्रकाशधारी युवक गणों के हृदयाकाश के बिद्युत् की चमक मूर्खतान्धकार की राशि मे वही गुण प्रकाश कर उच्छिन्न हो जाती है–अंधेरी रात में बिजली की चमक से इतना उपकार तो अवश्य होता ही है कि हम कहां खड़े हैं और हमारे आस पास क्या २ स्थूल पदार्थ हैं—सुतराम् अंगरेज़ी शिक्षा जनित अल्पस्थायी बिद्युत् प्रकाश से वे लोग जो आंख खोले घर के बाहर खड़े हैं चमक के समय कुछ देख लेते हैं पर कोठरी के भीतर सोने वाले अथवा बिषय कूप मण्डूकों के लिये एक बिजली नहीं चाहो सहस्र बिजली चमके बिना भगवान् भास्कर की उष्णता के पहुंचे कभी नहीं जागेंगे न उठैंगे–इस लिये अंगरेज़ी शिक्षा की यह बिद्युत् शक्ति जो बिरल नव बारिद मंडलों से उठती है कुछ अधिक उपकार नहीं कर सक्ती क्योंकि जब तक यहां की देश भाषा रूपी सूर्य्यप्रभा उदयाचल पर पांव न रक्खेगी कोई सामर्थी पुरुष इस अल्प स्थायिनी बिद्युत् शक्ति को चिर स्थायिनी कर सक्ता है? सो हमको कभी आशा नहीं होती कि यह देश नाशार्क प्रभा की ऊषा काल के आगे बढ़ सूर्योदय के नाम से पुकारी जायगी कारण यह कि चुम्बक शिला

केवल लौही शक्ति से मित्रता रखती है न सोने रूपे से—मान लीजिये अंगरेज़ी भाषा इस समय का सुवर्ण है परन्तु भारत की उन्नति रूपी चुम्बक शिला बिना देश भाषा रूपी लौही शक्ति पाये आलिङ्गनोत्साह नहीं प्रगट कर सक्ती-देशोन्नति रसिक लोग डंडो से मार२ कर चाहते हैं कि देशोन्नति चुम्बक सामयिक सोने से प्रीति कर अपनी जड़ता छोड़ आलिंगन को दौड़े किन्तु वे महात्मा लोग इतना भी नहीं सोचते कि देश भाषा को सुसम्पन्न कर भारतोन्नति चुम्बक से मिलावें पर सामयिक सोने की क़दर देख नहीं आशा होती कि यह बेल कभी मढ़ये चढ़ैगी जिस्को देखो वही रत्ती दो रत्ती इंगलिश रूपी सोनालिये भारतोन्नति चुम्बक को जिस्की तौल कई करोड़ मन सोने से भी अधिक है चैतन्य करने को दौड़ता है-कुछ वर्ष पहिले दरभंगा के महाराजा ने देशी भाषा की वृद्धि का ग्रंथ रचना के द्वारा उद्योग किया था इनाम की लालच से कुछ ग्रन्थ बने भी जो लोग वहां तक पहुंच जोड़ बन्दी लगा सके अपना काम निकाला सोभी न जानिये कहां झोंक दिये गये कि आज तक न छपे अब वहां भी सामयिक सोने की व्यवस्था न रह गई-इस अवध और पश्चिमोत्तर मंडलेश्वरों में राजा रामपालसिंह ने भी पुर्वोक्त चुम्बक शिला लौही शक्तिके संयोजन में परिकर बांधा था पर वहां भी उसी सामयिक सोने की क़दर मंज़िलत बढ़ती जाती है इसको इस लिये खेद होता है कि उक्त समर बिजई का धन संजीवन औषधी रूप है हिन्दुस्तान दैनिक समाचार रूपी वैद्य बना हुआ है जिसके द्वारा सहस्रों अनाथ रोगी पथ्य सेवन सीखते और चंगे होते पर खेद है कि वह जिस उठान से उठा वैसा न रहा-ईश्वर करै प्रिय दैनिक हिन्दोस्तान की वह दशा न हो जैसा एक बीमार हरिण की हुई थी जिस्को देखने को बहुत से भाई बिरादरी इकट्ठा हुये और बन की हरी भरी दूब चर डाली जब वह निरोग हुआ तो बिना चारा पानी के मौत से अधिक दुख पाने लगा—हिन्दुस्तान के स्वामी तथा

उसके एडिटर महाशय इस अबिनय को जो शुभ चिन्तकता के ध्यान से की गई है क्षमा करैंगे-यों इस समय भाषा की उन्नति में बहुत लोग यत्न कर रहे हैं देखैं कहां तक कृतकार्य होते हैं-

स्त्री शिक्षा के दोष।

एकव और सभाओं में हमारी सुपठित मंडली स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में कितने ही लम्बे २ व्याख्यान दे जैसा चाहें वैसा मन्तव्य पास करदें किन्तु स्त्री शिक्षा की वास्तविक दशा क्या है इस पर ध्यान देने से कुछ और ही बात देखी जाती है बुड्ढे खुर्राट और अनपढ़ों को तो हम अलगही किये देते हैं बरन उन्हे लीजिये पश्चिमी शिक्षा के प्रकाश से जिनको चका चौंधी सी आरही है उन्मे भी स्त्री शिक्षा का ऐसा उत्साह नहीं पाते जैसा होना चाहिये-सुशिक्षितों में बहुत से ऐसे लोग हैं जिनका हार्दिक्य भाव क्या है सो स्पष्ट रीति से नहीं प्रगट होता पर इतना तो अवश्य है कि स्त्री शिक्षा के द्वारा पश्चिमी सभ्यता हमारे परदे के भीतर भी पहुंच रही है और सुधार चाहने वालों के चीखने से अब यह प्रबाह रुकने वाला नहीं मालूम होता-जब तक यह बला परदे के भीतर नहीं गई थी तब तक हमारी कुलवती कुल की परिपाटी पर अच्छी तरह दृढ़ रहीं किन्तु अब कुछ और ही रंग ढंग देखने में आरहा है-महिला जन जहां थोड़ा पढ़ना लिखना जान गईं बस इतने ही में फूली नहीं समातीं, तब वे बात २ में अपनी श्रेष्ठता जनाने लगती हैं-पति बाहर अनेक झौंझट सह घर में जहां उसके स्वतंत्रता में कोई बाधा छोड़ने वाला न था सुख से काल क्षेप करता वहां पत्नी अब उस पर अपना अधिकार जमाने वाली उपस्थित है "स्त्रीणामशिक्षितपटुत्व" प्रसिद्ध है बिद्यावती होने से उनकी चतुराई और सयाने पने का फिर क्या कहना-हम पहिले कह आये हैं अंगरेज़ी सभ्यता हमारे परदे के भीतर भी दखल जमा रही है अंगरेज़ी में बर और बधू दोनो के लिये दो शब्द ब्राइडग्रूम और ब्राइड है ग्रूम के माने सईस के हैं अर्थात् बर बधू का

मईस या सेवक है-मालूम होता है बहुत प्राचीन समय से बिलाइत में पति पत्नी के सम्बन्ध से जो कल्पनारूढ हो गई है उससे सिद्ध है कि पति पत्नी का सेवक है आश्चर्य है कि सभ्यता के इस बड़े ज़माने में भी अब तक वही बात कायम है वल्कि इस नूतन सभ्यता का प्रधान अंग समझा गया है और पति का सेवा धर्म समाज में उत्तम आचरण माना गया है-इसमे संदेह नहीं अंगरेज़ी लेडियां बिद्या और स्वतंत्रता के कारण उन्नति की अन्तिम सीमा तक पहुंच गई हैं और स्त्रियों की स्थिति और रहन सहन में अन्तर पड़ गया है तथापि अंगरेज़ जाति में बड़े २ बुद्धिमान् अपनी स्त्रियों को पुरुषों से श्रेष्ठ मानने में और उन्हे पुरुषों की नाईं राजकीय उच्चपद देने में अपनी सम्मति नहीं देते- उनमे बड़ी २ पंडिता हैं सुलेखक हैं वक्तृता में पटु हैं परन्तु इंगलैंड ऐसे स्वतंत्रता प्रिय देश में भी स्त्रियों को पुरुषों के समान राजकीय अधिकार प्राप्त नहीं है-इसमें सन्देह नहीं बिद्या के अधिक प्रचार से स्त्रियों में स्वतंत्रता का भाव अधिक आगया है कितनी तो स्वतंत्र बिना व्याही रह अपना जीवन बिताना पसन्द करने लगी हैं-इसी से बहुत से साहब लोग बिबाह करने से हिचकते हैं क्योंकि नस २ में जिसके स्वतंत्रता समाई हुई है ऐसी लिखी पढ़ी स्त्री को व्याहना पूरी झंझट सिर पर लादना है वल्कि उन लोगो में यह कहावत चल पड़ी है कि बिरले भाग्यवान् पुरुष को बिबाह सुखदाई होता है-अंगरेज़ों में स्त्री शिक्षा का यह परिणाम हुआ है उसकी हवा हमारी स्त्रियों पर भी अपना असर डाल रही है जो हो अंगरेज़ी की यह कहावत बहुतही सटीक मालूम होती है- "बिबाह कर गृहस्थी का बोझ बरकत थोड़े लोगों को है किन्तु दुखदाई बहुतों को है चिन्ता और तरह २ की फिकिर तथा तरद्दुद तो सबी के लिये है" यह बहुत ही ठीक है किन्तु पशुप्राय हम हिन्दुस्तानियों के लिये नहीं जिन्मे बिबाह कर सृष्टि का बढ़ाना ही जीवन का सार है निष्पुरुषार्थी अकर्मण्य अपाहिजों का दल अधिक होता जाय इसी में

भलाई हैधिक्-हम लोगों की रग२ में यह बात परंपरा से समाई हुई है कि स्त्री पति के अनुकूला हो अनुगामिनी हो पति भक्तिमती हो, न कि स्वतंत्र चलने वाली हो पर अब हम भारतीय आर्य महिलाओं को अंगरेज़ी सम्प्रदाय की शिक्षा पाने से बिदेशी स्वतंत्रता की छटा से कुछ निराली ही प्रतिभा प्राप्त होते हुये देखते हैं और प्राचीन से चली आई हुई स्त्रियों की स्वाभाविक शालीनता का रूप बदलते हुये देखते हैं तो यह रूपांतर हमारे चित्त में खटक पैदा करता है-अपनी स्त्रियों को देख हमे यह डर होती है कि किसी दिन वे अपनी हिन्दुआनी ही को निपट भूल जाँयगी-उनके बिज्ञान हीन होने से, उनके अपढ़ होने और उनकी अज्ञानता से हमे यदि कुछ लाभ हुआ है सो यह कि वे हमे बने बिगड़े जैसे हैं तैसे हिन्दू तो बनाये हैं परन्तु अब वे अंगरेज़ी हवा लगने से यदि सज्ञान हो हिन्दुआनी को भूलना आरंभ कर रहीं हैं तो कदाचित् ईश्वर न करे वह दिन भी आ पहुंचे कि हम अपने को भारत भूमि के पुत्रही नसमझने लगेंगे-पढ़ लिख कर यदि प्राचीन कुल रीति को छोड़ने लगें तो हमें उनकी विद्या पर घृणा होती है इस्से तो स्त्रियों का निरक्षर रहना ही भला है उनके लिये अज्ञान ही सुख का आगार है क्योंकि उस हालत में वे हमारी संसार यात्रा के मार्ग में काँटे नहीं बोवेंगी-

यह सुनतेही हमारे नाम धारी स्त्री शिक्षा के अभिमानी एक बारगी हम पर टूट पड़ेंगे और यह प्रश्न करेंगे कि क्या फिर स्त्रियों को बिल-कुल ही बिद्या से वंचित रखना योग्य है? क्या वे घर गृहस्थी के नीच कर्म से बाहर ही न निकाली जावें? क्या उन्हे अज्ञान के अँधियारे ही में रह कर पशुओं की नाईं जीवन काटना योग्य है? क्या उन्हे मानवी जाति का कुछ भी अधिकार न मिलने पावै? उनके इन सब प्रश्नो का उत्तर हम धीरता और शान्त चित्तसे यही देंगे कि उन्हे सर्वथा बिद्या से वंचित नहीं रखनी चाहिये उन्हे सत् बिद्या सद्विचार सदाचार सत्कर्मों

के बिचारों से भूषित करना चाहिये यही हमारा परम धर्म है साम्प्रत में जो शिक्षा प्रणाली पुत्री पाठशालाओं में प्रचलित है जो उपकरण स्त्रियों की शिक्षा के लिये नियुक्त हैं और जो रीति नीति स्त्री शिक्षा हमारी भारतीय स्त्रियों को सिखाती है उन मे सुधार होना अति अवश्य है हम वास्तव में स्त्री शिक्षा के बिरोधी नहीं हैं न कोई समझदार सत्यप्रिय और साक्षर मनुष्य ऐसे सत्कार्य के बिरुद्ध होही सकता है परन्तु जो परिणाम कि साम्प्रत की शिक्षा परिपाटी में दिखाई देता है उसको देख यही कहना पड़ता है कि स्त्री शिक्षा के सद्गुणों के साथ कुछ ऐसे अवगुण शिक्षित स्त्रियों में उत्पन्न होते हैं जो हमारी कौमियत को जड़ पेड़ से काटे देते हैं—ज्ञान लव दुर्बिदग्धा स्त्रियां इस प्रकार कहती हैं कि बिद्या कहीं दुर्गुणों को भी पैदा कर सकती है? यह कहना बड़ी मूर्खता है कि स्त्रियां लिख पढ़ कर दुर्वृत्त हो जाती हैं क्योंकि यदि बिद्या का यही परिणाम है तो फिर लड़कों को बिद्या क्यों पढ़ाई जाती है यदि कुपरिणाम पैदा करना बिद्या का स्वाभाविक गुण है तो वही कुपरिणाम वह लड़कों पर भी क्यों नहीं पैदा करती परन्तु लड़कों के लिये तो पढ़ना लिखना अतीव आवश्यक समझा जाता है और उनके साक्षर होने के लिये हज़ारहों रुपये खर्च किये जाते हैं इस से यह प्रतिफलित होता है कि यह अन्याय है कि स्त्रियों के बिषय में बिद्या दुर्गुणों की पैदा करने वाली समझी जावे—यह मनुष्यों की स्वार्थ परता है खुद गर्ज़ी है जिस से वे स्त्रियों की उन्नति में समझ बूझ कर बाधा डालते हैं—यदि बिद्या से लड़कों की उन्नति होती है तो उस से लड़कियों की उन्नति भी क्यों कर न होगी? हम भी यही समझते हैं कि विद्या ऐसी बस्तु है कि ठीक ठीक तौर पर पढ़ाई जाय तो लड़के और लड़कियों के लिये वह एक सी लाभदायक है यह वह दीपक है जो धनिक और गरीब सबको एकसा प्रकाश देता है परन्तु ऐसा देखा जाता है कि बिद्या का उपयोग सब लोग एकही

सा नहीं करते लड़को को बिद्वान् बनाने के लिये हज़ारहों रुपया खर्च कर के भी हम यह देखते हैं कि वे सब योग्य नहीं होते; ज्ञान की दशा का बिचार किया जाय तो यही कहना पड़ेगा कि परीक्षा के लिये उन्हे किताबें याद होती हैं परीक्षा के पश्चात् वह बिषय उनकी स्मरण शक्ति के बाहर हो जाता है इससे ज्ञान की परिपूर्णता उन में नहीं होती इतने अनेक बहुधा बिषयों का अनुशीलन करना पड़ता है कि लड़के पढ़ते २ कृश होजाते हैं– उन्हे पढ़ने से और किसी गृह कार्य के लिये फुरसत नहीं मिलती अन्त को हम उन्हें बड़ी से बड़ी पदवी तक पढ़ा कर भी व्यवहार शून्य पाते हैं अनाधिकारी होने से वे परीक्षा पास कर के अपने को किस कार्य के लिये वे योग्य हैं यही नहीं समझ सके – इन सब परिणामो को देख आज कल बिश्वबिद्यालयों के सुधार के लिये पंचायत कमीशन् बैठाना ज़रूरी समझा गया है, तो फिर कहिये स्त्री शिक्षा का क्षेत्र क्या सर्बतोभावेन निर्दोष है ? क्या वहां बिद्या के केवल सत्परिणामही दिखाई देते हैं–नहीं २ जहां जहां दोष है वहां सुधार होना अति अवश्य है इसी से हम ने कहा कि स्त्री शिक्षा हो परन्तु उसके और उपकरणों में सुधार होना चाहिये जिस्मे हमारी ललना जन अपनापन से पराङ्मुख न होवें हिन्दुआनी को न भूलैं और वे अपनी प्राचीन श्रेष्ठता के निकट नित्य पहुंचती जावैं और यह सुधार क्यों कर हो सक्ता है यह और कभी कहैंगे–

गणपति जानकी राम दुबे बी०-ए०,
ग्वालियर.

समायाति यदा लक्ष्मीर्नारिकेलिफलाम्बुवत्।
विनिर्याति यदा लक्ष्मीर्गजभुक्तकपित्थवत् ॥

आदमी के दिन बने रहते हैं तब सब ओर से उसकी बढ़ती ही बढ़ती

होती जाती है और इसमे तो कुछ सन्देह ही नहीं कि धन के आगमन के साथही साथ बुद्धि और सौन्दर्य तथा नफ़ासत मानो धन के अनुयायी रहते हैं धन जब निकल गया तो पुरुष वही रहता है पर "अर्थोष्मा" धन की गरमी न रहने से पल भर में और का और हो जाता है "अर्थोष्मणा बिरहितः पुरुषः स एव अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्" रुपये पास हैं तो उसके समान बुद्धिमान् कोई बिरला ही होगा सच है दरिद्रता या मुफ़लिसी अकिल को चर लेती है नोन तेल लकड़ी की हर जून चिन्ता में बिपुल मतिवाले की भी बुद्धि कश धन होने से नष्ट हो जाती है—

घृत लवण तैल तन्दुल तक्रेन्धन चिन्तया सततम् ॥
नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिः पुरुषस्य मन्द विभवस्य ॥

सच कहा है "भाग्यवन्तं प्रसूयेथाः माशूरं माच पण्डितम्" निरे भौंडी अकिल के बोलने का शहूर नहीं पर धन है तो उनके समान बक्ता और बुद्धिमान् कुशाग्र बुद्धि दूसरा कोई नहीं; रुपया पास है तो नितान्त कुरूप कोइला से काले कलूटे भी रूप लावण्य में एकता हैं; मानो कन्दर्प के भी दर्प को हरे लेते हैं तरह दारी वजह और नफ़ासत तो उन से और कोई सीख ले-सब के ऊपर तो यह कि उनका कलेजा तर है भीतर से पुष्ट पोढ़े और ठोस नारियल के फल सदृश सारगर्भित हैं कदर्यता के कारण फूटी टूटी दशा में रह ऊपर से अपने को छिपाये हुये हैं—लक्ष्मी के कृपा पात्र होते ही जितने काम सब शुरू हो गये; संगीन पक्का मकान भी छिड़ गया ज़ेवर पर ज़ेवर पिटने लगे; हाथी घोड़े सवारी शिकारी एक की जगह चार; इधर गांव और इलाके ख़रीदे जाने लगे बाग़ और चमन आरास्ता हो रहे हैं; सब तरह की खरीद्फरोख्त होने लगी बनिज व्यौपार में रुपयों की झनझनाहट जिस समय देखो उसी समय कानों को सुख दे रही है भाग्यवान् लक्ष्मी

माता का दुलारा जिस व्यवसाय की ओर झुक पड़ता है उधर ही कामयाबी उसके आगे हांथ जोड़े खड़ी रहती है—बर्सात में जैसा किसी झील या बड़े तालाब में पानी सब ओर से आय सिमिट २ जमा होने लगता है उसी तरह रुपया उस भाग्यवान् के पास दिन दूना रात चौगुना बढ़ता ही जाता है—वही अभागा जिसके दिन गिर गये ऊपर से कितना ही अपने को चूना पोती कबर सा रंगे चुंगे रहे पर भीतर उसके सब ओर से "गज भुक्त कपित्थवत्" पोलही पोल–हाथी जैसा समूचे का समूचा कैथा निगल जाता है सहिगा लीद कर देता है पर गूधा भीतर उसके बिलकुल नहीं रह जाता–ऊपर का यह राम रसरा इंगलैंड और हिन्दुस्तान के सम्बध में आज दिन सब भांत पूरा उतर रहा है–हिन्दुस्तान इस समय अपना पोलापन दूर करने को सब रंग रंगता है पर एक नहीं चलती बिलाइत वालों की हर एक बात में पौबारह है हिन्दुस्तानियों के वही तीन काने ढांक के तीन पत्ते न जानिये कौन सा कुटिल कराल क्रूर ग्रह इसे घेरे हैं कि यहां हम जो कुछ करते हैं जो कुछ सोचते हैं सब में भरे मुह नीचे ही को गिरते हैं–वही इङ्गलैंड जिधर को आंख उठाता है कामयाबी बद्धांजलि आय सन्मुख खड़ी हो जाती है जिसके पुत्रों के तनिक भ्रू बिक्षेप में बड़े २ सम्राट् शिरोमणि कांप उठते हैं बीराग्रगण्य भी जिनके सामने अपने को कायर मानने लगते हैं जिनके कृपा कटाक्ष के लेश मात्र में निष्किंचन भी कुबेर बन जाता है फाके मस्त कंगाल राजा बन बैठता है जिन के प्रसाद लक्ष्मी की आकांक्षा उच्च कुल प्रसून नरेश रखते हैं; जहां के घासकट और बढ़ई लुहार शासन में अधिकारी बन जैसा चाहें वैसा नाच नचा सके हैं जहां की रहन सहन सभ्यता की नाक समझी जाती है जिसका अनुकरण करने में हम अपनी जन्म जन्मान्तर सात पुरुषा पर्यन्त की परंपरागत चाल चलन को भूल गये इत्यादि उनके अनेक महत्व को कहां तक गिनावें दिग् दर्शन हमने करादिया पढ़ने वाले समझ लेंगे–

गीता सार समुच्चय ॥

पहिले के आगे से ॥

दसवें अध्याय में भगवान् को अपनी बिभूति का वर्णन करना है इस लिये इस तरह पर आरंभ करते हैं ॥

योमामजमनादिं च वेत्ति लोक महेश्वरम् ।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्व पापैः प्रमुच्यंते ॥

जो पुरुष मुझको अजन्मा अनादि संपूर्ण बिश्व का सब से बड़ा ईश्वर या स्वामी जानता है मनुष्यों में वही मोह रहित है और सब पापों से छुट जाता है क्योंकि पाप तो तभी तक है जब तक हम मोह में पड़े अज्ञानी हो रहे हैं— पहिले कह भी आये हैं (ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन) ज्ञान ऐसी अग्नि है जो सब कर्मों को भस्म करती है अर्थात् ज्ञानी होकर पाप कर्म फिर करेहीगा क्यों जो अपने को ज्ञानी मान बैठा है और पापों को करता जाता है वह झूठा ज्ञानी दंभ का रूप है

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शुचिः सुखं दुःखं
भवोऽभावो भयं वाभयमेवच अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं
यशोऽयशः भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥

सार असार सत् असत् का बिबेक जो बुद्धि का काम है; मैं कौन हूं और क्या हूं जो ज्ञान से होता है असंमोह अर्थात् कड़ी से कड़ी बिपत्ति में पड़ कि कर्तव्यता मूढ़ हो घबड़ाना नहीं; क्षमा अर्थात् सहन शील होना; अपने प्रतिकूल कोई कुछ कहे कोई कुछ करै सब सह-लेना; "सत्य" यथार्थ कहना यथार्थ करना या सोचना शम; शान्ति या बाहर की इन्द्रियों को दबाना बिषयों की ओर जाने से उन्हें

रोकना; "सुख" अनुकूल वेदनीय; "दुःख" प्रतिकूल वेदनीय; "भव" उत्त्पत्ति; "अभाव" नाश; "भय" डर; "अभय" निडर; "अहिंसा" पर पीड़ा "निवृत्ति" मन बच कर्म से किसी का अनिष्ट न करना न सोचना या न मुख से ऐसी बात बोलना जिससे किसी को कुछ दुःख पहुंचै– पतंजलि के योग सूत्र में लिखा है "अहिंसा प्रतिष्ठया सर्बत्र बैराभावः" जिसने अहिंसा पर पूरा अधिकार जमा लिया उसका किसी से बैर नहीं रह जाता; गीता में भगवान् ने भी कहा है "निर्बैरः सर्बे भूतेषु यः स मामेति पाण्डव" वह पुरुष जिसको किसी से बैर नहीं है मुझको प्राप्त होता है "समता" समदृष्टि राग द्वेश का न होना अर्थात् न किसी से प्रीति न किसी से बैर; "तुष्टि" सन्तोष; "तप" 'स्वधर्मा' नुष्ठान कोई २ इन्द्रियों को बश में करना भी तपस्या कहते हैं; "दान" न्याय से अर्जित धन का सत्पात्र में बिनियोग या अच्छे काम में उसे लगाना "यश" सत्कीर्ति "अयश" अपकीर्ति प्राणियों के ये सब नाना प्रकार के भाव भगवान् कहते हैं मुझी से उत्पन्न होते हैं ऊपर कही हुई बातों में जिस महापुरुष ने किसी एक या दो बातों पर भी अपना पूरा अधिकार जमा लिया उसके सिद्ध होने में कोई सन्देह नहीं; जिसने सबों को पूरी २ तरह पर साधा वह तो साक्षात् ईश्वर या देवता है मनुष्य वह नहीं है–

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः संर्व प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमान्विता॥

सम्पूर्ण जगत् की उत्पति के कारण हमी हैं हमी से संसार के सब कार्य होते हैं विवेकी जन विद्वान् ऐसा जान कर मुझे भजते हैं–आगे भक्ति मार्ग का क्रम कहते हैं–

मच्चित्ता मद्गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमान्तिच॥

जिनका चित्त केवल मुझी में लगा है संसार के वाह्य विषयों की जिन्हें कुछ भी खबर नहीं केवल अपने सेव्य प्रभु की सेवा में एकाग्र हैं जिनका प्राण केवल मुझी में अर्पित है अर्थात् जो अपने जीवन तक को प्रभु की सेवा के आगे कुछ नहीं समझते; परस्पर एक दुसरे को मेरा बोधन अर्थात् भूल जाने पर याद दिलाते हैं; सोते जागते सदा मेरा ही कथन अर्थात् नामोच्चारण करते हैं; हमारी चर्चा में जिन्हे सन्तोष और सुख मिलता है और वही जिन्हे भावता है–भक्ति मार्ग का बड़ा ही पोषक यह श्लोक है किन्तु मुल्की जोश के नाश करने के मानो यह भक्ति कुलिश पात सी हुई–हमारे गिरे दिनों को जल्द बुला लाने को मानो दुती सी बनी–मुसल्मानों के लगातार हमलों से जब भारत शीर्णजीर्ण हो चुका था उसी समय भक्ति का अधिक प्रकाश हुआ बड़े २ महानुभाव भक्त जन भी उसी समय हुये हैं देश का देश कमज़ोरी की दशा में आय भक्ति की ओर झुक पड़ा बड़े २ प्रतापी क्षत्री भी लड़ना भिड़ना छोड़ माला हाथ में ले नवधा भक्ति का साधन मुख्य काम और जीवन का सार समझ बैठे–भक्ति मार्ग के साधन का अध्यात्मिक लाभ आगे दिखाते हैं–

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

वे जो सदा मुझ में युक्त चित्त रहते हैं और प्रीति पूर्वक मेरा भजन करते हैं उनको मैं ऐसा बुद्धि योग देता हूं जिससे वे मुझे पाय जाते हैं–पर इस तरह निःस्वार्थ प्रीति पूर्वक भजने वाले ऐसे ही कोई बिरले हैं दाम्भिक अलबत्ता बहुत अधिक हैं जिनसे उनमे बुद्धि योग के बदले स्वार्थ बुद्धि और उदार भाव सरलता तथा सत्य व्यवहार के एवज़ चित्त की संकीर्णता कपट कुटिलाई और झुठाई विशेष आ समाई–

तेषामेवानुकंपार्थ महमज्ञानजं तमः
नाशयाम्यात्म ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

उन पर दया कर उनके हित के लिये हम उनकी बुद्धिवृत्ति में स्थित हो प्रभावशाली प्रकाशमान् ज्ञानदीपक से अज्ञान के कारण उत्पन्न अन्धकार को दूर हटा देते हैं तब वे मुझे पा जाते हैं-आगे अध्याय के अन्त तक किसमें मै कौन हूं सो दिखाते हुये भगवान् अपनी विभूति का वर्णन करते हैं-विभूति के वर्णन में कोई २ बात विशेष लक्ष्य के योग हैं जैसा-"इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना"-भगवान् कहते हैं इन्द्रियों में मैं मन हूं ठीक है इन्द्रियां क्या कर सक्ती हैं जब तक मन उस ओर रुजू न हो इसलिये कि मन जो बड़ा चंचल और वेगगामी है जिसके वेगगामिता की बराबरी किसी में हई नहीं उसी को स्थिर और बस में लाने को हमारे यहाँ बड़े २ उपाय बुद्धिमानों ने सोचा है प्राणायाम इत्यादि सब का प्रयोजन मन को स्थिर और एकाग्र करने ही का है यजुर्वेद में ५ ऋचाओं का शिव संकल्प सूक्त हैं उसमें मन का बहुत अच्छा वर्णन किया गया है इसी से-

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
मनः कृतं कृतं लोके न शरीरकृतं कृतम्" ॥

बहुत ही सटीक है-दूसरा प्राणी मात्र में चेतना हमी हैं ठीक है चेतना ही तो उस व्यक्ति का बोधक जिसका न रहना ही मरजाना है चेतना निकल गई तब यह जड़ हो काष्ट लोष्ट सदृश पड़ा रहता है-और भी "यज्ञानां जपयज्ञोस्मि" यज्ञों में जपयज्ञ हूं इसलिये कि जप मन से संबन्ध रखता है "जप मानसे" धातु ही है जप का मन पर बड़ा असर पहुंचता है-"अध्यात्म विद्या विद्यानाम्" विद्याओं में अध्यात्म विद्या मैं हूं इसलिये कि संसार में निस्तार करने वाली अध्यात्म ही विद्या है-"वादःप्रवदतामहम्"-वाद वितण्डा जल्प इन तीनों में मैं

वाद हूं—प्रति पक्षी को जीतने की इच्छा न रख यथार्थ तत्व के निर्णय के लिये वादी प्रतिवादी में विचार "वाद" है; किसी प्रकार दूसरे का मत खण्डन कर अपना मत स्थिर रखना "जल्प" है—अपने मत का स्थापन हो या न हो दूसरे के मत के खण्डन के लिये आडम्बर "वितण्डा" है—"द्यूतंछलयतामस्मि"—छलने वालों में मै जुआ हूं—सच है सब ऐबों की जड़ जुआ है—"नीति रस्मि जिगीषताम्"—जीतने की इच्छा रखने में हम नीति हैं—सच है नीति पर चलने वालों की सदा जीत होती है—अन्त में सिद्धान्त वाक्य कहते हैं कि चर अचर में ऐसा कोई नहीं है जो मेरी सत्ता से रहित हो—और भी—

"यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेववा ।
तत्तदेवावगच्छत्वं मम ते जोंऽशसंभवम्" ॥

संसार में जो २ विभूतिमान् हो जिसमें कुछ विच्छित्ति विशेष पाई जाय या जो कोई असाधारण बात है वह सब मेरा ही रूप है—आगे भगवान ने अर्जुन को अपने ही शरीर में विश्व भर को दिखाया है तो निश्चय हुआ कि समस्त संसार मनुष्य के इस छोटे से शरीर में है मानो हमारा देह इस दृश्य जगत् का एक छोटा सा Epitomy सार संग्रह है अच्छे योगी जिन्हों ने छहो चक्रों को भेद लिया हैं वे इस बात को अपने योग बल से प्रत्यक्ष कर दिखा भी सक्ते हैं—जैसा यह अन्त का श्लोक है—

"अथवा बहुनैतेन किं ज्ञानेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्" ॥

अथवा हे अर्जुन इस अनेक प्रकार के भेद ज्ञान अर्थात् अलग २ जानने से क्या इस सम्पूर्ण जगत् में मै अपने एक अंश से व्याप्त रह इसे धारण किये स्थित हूं—तात्पर्य यह कि मेरे बिना और कुछ भी इस नश्वर जगत् में नहीं है—शेष—

प्राचीन ग्रन्थकार और कवियों की जीवनी।

दण्डी।

दण्डी कवि किस देश में कब हुए उसका निर्णय नहीं हो सक्ता। बङ्गालियों ने तो अनुमान किया है कि विदर्भ देश की विशेष प्रशंसा दश कुमार चरित में मिलने से संभव है कि ये विदर्भ वासी हों। पर ऐसा सिद्धान्त बना लेना भूल है क्योंकि इस नियम के अनुसार कालिदास को प्रयाग वासी भी कहना पड़ेगा। देखो रघुबंश त्रयोदश सर्ग ५४ से ५७ श्लोक तक। दूसरे लोग अनुमान करते हैं कि काव्यादर्श में 'लिम्पतीवतमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः, इस श्लोकार्द्ध के आने से शूद्रक की अपेक्षा ये अर्वाचीन हैं। शूद्रक का समय लोगों ने सन् की पहिली सदी रक्खा है। जो कुछ हो पर दण्डी बहुत प्राचीन कवि समझ पड़ते हैं क्योंकि—

जाते जगति बाल्मीकौ कविरित्यभिधा भवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डनि॥

यह प्राचीन श्लोक उक्त बात को सिद्ध करता है। यह अनुपम कवि यदि कालिदास के समकालीन हों तो कुछ अचरज नहीं। कालिदास से इनके शास्त्रार्थ होने का कथानक भी इसकी सिद्ध में सहायक है। राज शेखर कवि सन् ९६१ ई० में हुऐ हैं और उन्हों ने अपने ग्रन्थ में दण्डी का नाम दिया है। इसके द्वारा विलसन साहिब का यह अनुमान कि दण्डी सोमदेव भट्ट की अपेक्षा अर्वाचीन हैं और कथा सरित् सागर देख के उन्हों ने दश कुमार चरित बनाया होगा ठीक नहीं समझ पड़ता है। निदान इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि दण्डी शूद्रक कवि और राज शेखर कवि इन दोनों के बीच के समय में हैं। शूद्रक का समय सन् ईस्वी की पहिली सदी और राजशेखर का आठवीं सदी है। इस समय में छटवीं सदी जोकि कालिदास का समय

है भी अन्तर्गत है सो कथानक के आधार पर दण्डी को छठवीं सदी का कवि कहना असङ्गत नहीं बोध होता॥

जो लोग संसाराश्रम को छोड़ के सन्यासी हो जाते हैं उन्हें दण्डी कहते हैं-संभव है कि दण्डी कवि का नाम न हो के केवल उनका आश्रम मात्र द्योतित करता है। इस अनुमान के पोषण में पण्डित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर लिखते हैं-दण्डियों के रहने का कोई नियत स्थान नहीं है वे सदा रमते विचरते रहते हैं केवल वर्षा ऋतु के चार महीनों में यात्रा में बहुत अधिक क्लेश मिलने के कारण वे प्रायः वर्ष के वर्षा भाग मे किसी गृहस्थ के यहां टिक रहते हैं। ये दण्डी कवि भी बरसात में किसी गृहस्थ के यहां टिक रहते थे और प्रत्येक चौमासे में एक २ ग्रन्थ बनाते थे। जिस बार दण्डी जिस गृहस्थ के यहां टिकते थे वर्षा के अन्त में चलते समय अपनी रचित पुस्तक उसी को सौंप जाते थे। दश कुमार चरित को दण्डी ने एक वर्ष के चौमासे में बनाया। वैसे ही अलङ्कार ग्रन्थ काव्यादर्श भी एक ही चौमासे का बना प्रतीत होता है। यदि यह किंवदन्ती सत्य हो तो दण्डी रचित ग्रन्थों के आरम्भ और अन्त में जो न्यूनता देख पड़ती है उसका भी उत्तर मिल जाता है क्योंकि ऐसा भी सुनने में आता है कि दण्डी ने जिस बरसात में दशकुमार चरित बनाया उसी बरसात में उनका देहान्त हुआ। इसी कारण न तो दश कुमार सम्पूर्ण हो सका और न उसका ठीक पूर्वापर सम्बन्ध लग सका॥

दण्डी के बनाये जो ग्रन्थ आजकल मिलते हैं उनके नाम ये हैं-काव्यादर्श, दशकुमार चरित, छन्दोविचित और कला परिच्छेद इत्यादि। वासवदत्ता की भूमिका में हाल साहिब ने अनुमान किया है 'लिम्पतीवतमोऽङ्गानि' इत्यादि श्लोक दण्डि विरचित हैं और मम्मट ने इसे काव्य प्रकाश में उठाया है। यह असंभव न होगा क्योंकि मान लिया जावे कि मम्मट ने दण्डी का रचित श्लोक उठाया

तो वे दण्डी से पिछले रहेहोंगे। इससे विलसन् साहिब के सिद्धान्त में अवश्य भूल समझ पड़ती है अर्थात् यदि सोमदेव की अपेक्षा दण्डी अर्वाचीन हों तो मम्मट से प्राचीन नहीं हो सकते। यदि हाल साहिब का अनुमान ठीक हो तो या तो उक्त श्लोक मृच्छकटिक में प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा वा शूद्रक को कालि दास दण्डी आदि की अपेक्षा नवीन स्वीकार करना पड़ेगा॥

दामोदर गुप्त।

ये कवि कश्मीर निवासी हैं इनका बनाया ग्रन्थ 'कुट्टनी मतम्' है। राज तरङ्गिणी में लिखा है कि–

स दामोदर गुप्ताख्यं कुट्टनी मतकारिणम्।
कविं कविं बलिरिव धूर्यंन्धी सचिवं व्यधात्॥

जिसके द्वाराविदित होता है कि ये महराज जयापीड़ के मन्त्री थे। जयापीड़ का समय सन् ७७२ ई० से लेके ८०३ ई० तक निर्णीत है निदान दामोदर गुप्त का भी यही समय है। कुट्टनी मत ग्रन्थ क्षेमेन्द्र कवि की समय मातृका हीं सा है। काव्य प्रकाश कार मम्मट ने इनके रचित दो श्लोकों को निज ग्रन्थ में उठाया है। इन्हीं दो श्लोकों को देखने से इनकी विलक्षण कविता शक्ति जानी जाती है। वे श्लोक–

यथा–

अंपसारय घनसारं कुरुहारं दूर एव किं कमलैः।
अलमलमालिमृणालै रिति वदति दिवानिशं बाला॥१॥
हृदय माधिष्ठित मादौ मालत्या कुसुम चाप बाणेन।
चरमं रमणी वल्लभ लोचन विषयं त्वाया भजता॥२॥

इनके ग्रन्थ लिखने का मुख्य उद्देश्य युवा पुरुषों को वेश्याओं के फन्दे से बचाना है और ग्रन्थ में यह दिखलाया है कि पुरुषों के लुभाने के लिये वेश्याओं के लिये क्या २ कर्त्तव्य है । इन इस ग्रन्थ के पढ़ने हारे यदि चतुर हों तो संसार में बहुत संभल के अपना जीवन बिता सकते हैं । ग्रन्थ का विषय अश्लील होने के कारण लोग दामोदर गुप्त में विशेष कवित्व की कुछ प्रशंसा नहीं करते किन्तु कवि यह अपने ढंग का बड़ा ही अनोखा था । हिन्दी प्रदीप की १९वीं जिल्द में इनका वर्णन विस्तार पूर्वक किया जा चुका है ।

दामोदर मिश्र ।

हनुमन्नाटक के अन्त में जो श्लोक लिखा मिलता है उससे अनुमान होता है कि हनुमन्नाटक का संग्रह दामोदर मिश्र ने किया है । भोज प्रबन्ध में लिखा मिलता है कि राजा भोज के समय में मल्लाहों ने नदी में जाल डालते एक पत्थर पाया जिसमें कुछ लेख खुदा मिला । राजा ने अपने सभासदों से जो पढ़वाया तो यह श्लोक निकला—

अयि खलु वि षः पुराकृतानां भवतिहि जन्तुषु कर्मणां विपाकः । क्व जनकतनया क्व रामजाया क्वच दशकन्धर मन्दिरेनिवासः॥

तदनन्तर कालिदास ने इतना भाग और भी पढ़ पाया—

शिवशिरसि शिरांसि यानि रेजुःशिव शिव तानि लुठन्ति गृध्रपादैः ॥

इस कथानक से विदित होता है कि भोज ही के समय में हनुमद्विरचित रामायण की चर्चा प्रसिद्ध हो चली थी । दामोदर मिश्र ने

निज सङ्कलन से उसे पूरा किया और हनुमन्नाटक वा महानाटक नाम रक्खा यह नाटक संस्कृत में है तो पर कालिदास भवभूति आदि की नाईं यह कवि प्रौढ़ वा चतुर नहीं जान पड़ते। नाटक के नियमों का इस ग्रन्थ में ठीक २ अनुसरण नहीं है। किन्तु इस नाटक में और २ कवियों के रचित ग्रन्थों के श्लोक भी उद्धृत देखने में आते हैं जैसे 'ग्रीवाभङ्गा-भिरामं' आदि शकुन्तला में, 'सद्यः पुरीपरिसिरेऽपि' आदि बाल रामायण में मिलता है जिससे अनुमान होता है कि वास्तव में दामोदर मिश्र ने संग्रह मात्र किया है। हनुमान्नाटक को छोड़ और कोई ग्रन्थ दामोदर मिश्र विरचित नहीं मिलता। लोग कहते हैं कि यह वीर रस प्रधान ग्रन्थ है पर इस में राम सीता बिषयक शृङ्गार भी बहुत भरा है। द्वितीय अङ्क का नाम जानकी विलास लिखा गया है प्रसन्न राघवकार राजशेखर वा भवभूति आदि की नाईं हनुमन्नाटक के शृङ्गार रस में सुघरता नहीं है। इसी पर विलसन् महाशय ने राम सीता विषयक विलक्षण शृङ्गार रस की हिन्दुओं की रुचि पर आश्चर्य प्रकट किया है। सो जो कुछ हो कवि बहुत प्रौढ़ नहीं जान पड़ते॥

काव्य प्रकाश के सप्तम उल्लास में मम्मट ने हनुमन्नाटक से--

न्यक्कारो ह्ययमेव मे यदरयस्तत्राप्यसौ तापसः सो ऽप्यत्रैव निहन्ति राक्षसकुलं जीवत्यहो रावणः। धिक्धिक् शक्रजितं प्रबोधितवता किं कुम्भकर्णेन वा स्वर्गग्रामटिका विलुण्ठन-वृथोच्छूनैः किमेभिर्भुजैः॥

उक्त श्लोक को उठा के उसका दो निर्देश किया है। निदान दामोदर मिश्र मम्मट भट्ट से प्राचीन व उनके सम कालीन हो सक्ते हैं पर मेरी समझ में ये भोज राज और मम्मट दोनों के समकालीन होंगे

अतएव इनका समय ख्रीष्टीय ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्व भाग निर्णीत होता है ॥

दिङ्नाग ।

ये महाशय बौद्ध मत के आचार्य और काञ्ची पुरी के निवासी थे। मल्लिनाथ ने मेघ दूत पूर्वार्द्ध के १४ वें श्लोक की टीका में "दिङ्नागानां पथिपरिहरन्स्थूल हस्तावलेपान्" दिङ्नाग को कालिदास का समकालीन बताया है। मैक्समुलर ने भी इसी अनुमान को स्थिर किया है। कालिदास तो बौद्ध न थे अतएव दिङ्नाग का मत उन्हें प्रिय न था। मेघ दूत के श्लोक से कलिदास की दिङ्नाग पर अश्रद्धा मल्लि नाथ के कथनानुसार स्पष्ट झलकती है। कालिदास के सहपाठी निचुल ने दिङ्नाग के आक्षेपों का खण्डन भी किया था। यदि कालिदास के समकालीन रहे हों तो दिङ्नाग का समय सन् ५२० ई० से ६०० ई० तक में मैक्समुलर के निर्देशानुसार हो सकता है–

कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि दिङ्नाग बहुत प्राचीन बौद्धाचार्य हैं और प्रायः भाष्यकार पतञ्जलि के समकालीन हैं। यह कुछ असम्भव नहीं है क्योंकि संभव है कि मल्लिनाथ ने केवल अटकल लगाया हो। काव्य प्रकरण में दिङ्नाग और निचुल का कोई उल्लेख नहीं केवल कालिदास की गुप्ताभिसन्धि का अनुमान श्लेष द्वारा किया गया है। फिर भी यदि कालिदास की गुप्ताभिसन्धि दिङ्नाग पर अश्रद्धा दिखलाने की हो भी तो उन दोनों का समकालीन होना क्यों आवश्यक है यह बात नहीं समझ पड़ती। यदि दिङ्नाग पतञ्जलि के समकालीन माने जावें तो उनका समय ख्रीष्ट के पूर्व २०२ वा ३०० वर्ष के बीच में कभी हो सकता है ॥

दिवाकर (१)

राजशेखर ने जो अपने पूर्व कवियों की सूची दी है उस में इनका नाम दण्डी, बाण मयूर आदि के साथ आया है जिस से विदित होता है कि ये भी उक्त कवियों के समकक्ष रक्खे गये हैं। इस आशय का एक और श्लोक भी मिलता है। यथा—

"अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्ग दिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समं बाणमयूरयोः॥

ये श्री हर्ष कन्नौज के महाराज हर्षवर्द्धन हैं। कादम्बरीकार बाण कवि इन्हीं के वर्णन में हर्ष चरित नाम गद्य ग्रन्थ लिखा है। प्राचीन शिला लेखों और चीन के यात्री ह्वेनसङ्ग के वर्णन के द्वारा इस श्री हर्ष का राज्य सन् ६०० ई० ६२५ ई० तक निर्णीत होता है। इसी समय में दिवाकर उसकी सभा के सभ्य थे। बाण वा मयूर सरीखे सद्वंश सम्भूत ये न थे पर सरस्वती के प्रभाव से उन्हीं के समान सुप्रतिष्ठित रहे॥

दिवाकर (२)

ये प्रसिद्ध ज्योतिषी भरद्वाज गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे। इनके पिता का नृसिंह और विद्यादाता गुरू इनके चचा शिव दैवज्ञ हैं। पं० सुधाकर दुबे के मत में इनका जन्म शाके १५२८ वा सन् १६०६ ई० होता है इन्होंने ने कई एक ग्रन्थ रचे उनमें से जातक पद्धति नाम ग्रन्थ सन् १६२५ में प्रकाशित हुआ। इनका निवास स्थान गोदावरी नदी के तट पर गोल नामक ग्राम था॥

दिनकर मिश्र ।

ये रघुबंश के टीकाकार एक प्रसिद्ध पण्डित हैं । लोग कहते हैं कि इनने सन् १३८५ ई० में यह टीका बनाई । ये बौद्ध मत के थे इस कारण इनकी रची रघुबंश की टीका के प्रारम्भ में मल्लि नाथ को नहीं रुची । इसी कारण रघुबंश की टीका के प्रारम्भ में मल्लिनाथ ने 'दुर्व्याख्या विष मूर्च्छिता' लिखा है । संभव है कि मल्लिनाथ के चित्त में उस समय बौद्ध मतवाले दिनकर मिश्र की अरुचिकर टीका स्थित थी । जब सन् १३८५ ई० में इनने ग्रन्थ रचा है तो दिनकर मिश्र का समय चौदहवीं शताब्दी खीष्टीय का पिछला भाग मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती । इतना और भी विदित होता है कि पहिले शङ्कराचार्य, तदनन्तर उदयनाचार्य, द्वारा परास्त किये जाने पर यद्यपि बौद्ध धर्म का प्राधान्य हिंदुस्तान में न रहने पाया पर तौ भी बौद्ध सिद्धान्त बादी दिनकर मिश्र सरीखे दो चार जन रही गये थे । संभव है ऐसे ही लोगों के पास बचे खुचे बौद्ध ग्रन्थ देख के माधवाचार्य जी ने सर्व दर्शन संग्रह में बौद्ध दर्शन लिखा हो । माधव के भाई सायण का मृत्युकाल सन् १३८७ ई० में है ॥

तो दिनकर का सायन और माधव से प्राचीन होना स्वतः सिद्ध है शेष—

सहायार्थ दान ।

हम सहर्ष निम्न लिखित महाशयों का प्रेषित प्रेस सहायार्थ दान स्वीकार करते हैं—

बा—माधोराम मिर्ज़ापुर ५)

बा—चेत्रूमल बूलचन्द्र स्यालपुर ५)

हमने गत मास में सूचना दी थी कि ५० नवीन ग्राहक और हो जाने पर पत्र को समय से निकाल सकेंगे सो नये ग्राहक होने कि कौन

कहीं दो चार बेइमानों ने वी-पी-लौटा दिया और उनका नाम हमे ग्राहक श्रेणी से निकाल देना पड़ा-अस्तु वहीं पुराने ढंग पर चलना हमारे भाग्य में लिख गया है सो ही होगा-

---

भारत मित्र की उदारता।

भारत मित्र ने अपने वार्षिक मूल्य २) के सिवाय १) और वेशी लेकर ५ किताबें जिससे सब मिला कर ६०० पृष्ठ हो जाते हैं ऐसा उत्तम उप-हार दिया है अब और क्या चाहिये सच पूछिये तो साल भर मुफ़्त में इसके ग्राहकों को घर बैठे दुनिया भर की खबर तथा एक से एक बढ़िया लेख पढ़ने को मिलता है इतने पर भी ऐसे पत्र पर ग्राहक न टूटें तो लाचारी है-

उपहार की पहली पुस्तक रास पञ्चाध्यायी और भवंर गीत।

अष्ट छाप के कविनन्द को कौन ऐसा वैष्णव है जो न जानता हो उन्हीं की यह ओजस्विनी कविता है पुराने कवि होने के कारण रच-यिता की बहुत कुछ खोज पर भी कहीं २ कविता में गड़बड़ी रह गई-

२ री किताब नीति वाटिका।

है-यह शेख़ सादी शीराज़ी के गुलिस्तां के चार बाव गद्य पद्य मय भाषान्तर है-बाबू सीताराम जी बी-ए- अब तक संस्कृत और भाषा ही में भ्रमण करते रहे-अब उन्हों ने फारसी उर्दू में भी टांग अड़ाना शुरू किया है-जो कुछ हो पुस्तक अच्छी है-

३री पुस्तक रानी भवानी।

गंगा राम जी गुप्त अपनी थोड़ी उमर में बहुत से उपन्यासों की भर मार कर डाला है उनमें से हाल में उन्हीं ने एक रानी भवानी लिखा है बंगाल की बीर सती साध्वी रानी भवानी का चरित्र किसके चित्त में अंकित नहीं है-हमारे यहां की स्त्रियें मन बहलाव, औरत मर्द का

किस्सा आदि किताबें न पढ़ ऐसी किताबें पढ़ैं तो क्या ही अच्छा हो-पर पुस्तक रचयिता ने अपनी पुस्तक में क्लिष्ट से क्लिष्ट शब्द भरने को नहीं मालूम कहां का गौरव समझा-यदि कोई स्त्री पढ़ना भी चाहे तो पढ़ कर क्या समझेगी-

४थी पुस्तक-सज्जाद सम्बुल।

है-पं-केशवराम भट्ट इसे बहुत पहिले रच गये थे उसी को भारत मित्र ने नया संस्करण कर अपने उपहार में बांटा है-यह उर्दू हिन्दी मय अच्छा नाटक है-

५वीं पुस्तक जीवनमृत रहस्य।

है-बा-गोपाल राम गहमर के दिमाग में जासूसी ढंग गिरो हैं-बस उसी तरह का यह उपन्यास भी समझिये इस में मेसमेरिज़म का नया ढंग है-

लीलावती।

श्री किशोरी लाल गोस्वामी जी के लेख चातुरी का एक यह भी नमूना है इस में हिन्दू समाज का ख़ाका खींचा गया है यह उपन्यास अवश्य सब के संग्रह योग्य है-पुस्तक अति रोचक है-

मूल्य ॥) रु-डा-व्य -)॥ मिलने का पता
श्री किशोरी लाल गोस्वामी ज्ञानवापी,
बनारस.

मानस पत्रिका।

यह मासिक पत्रिका काशी से महामहोपाध्याय श्री सुधाकर द्विवेदीजी द्वारा सम्पादित होती है-इसमें गोसाईं तुलसी दास

जी के रामायण की एक २ दोहों व चौपाइयों पर प्राचीन नवीन विद्वानों की टिप्पणी पर अच्छा खण्डन मण्डन लिखा जाता है-

वर्षिक मूल्य २॥) है-पता-महामहोपाध्याय
श्री सुधाकर-द्विवेदी खजुरी बनारस-कैन्टूनमेंट.

डायरी १९०५।

यह १९०५ ई०-की डायरी मुझे बी-एल-पावगी द्वारा प्राप्त हुई है इस्में दवा आदि की नोटिस न होकर सबों के मतलब की बातें दर्ज हैं जैसे ब्राह्मणों के मतलब के उपनयन बिवाह आदि मुहूर्त्त-सरकारी छुट्टियां रेल तार, डांक आदि की बातें दर्ज हैं इसको हर एक मनुष्य अवश्य अपने २ पास रक्खें-

मूल्य ।=) पता-बी-एल-पावगी-प्रोप्राइटर,
हित चिन्तक प्रेस बनारस.

फ्रैण्ड्स डायरी।

इस डायरी में भी रोजनामचे के टेबिल के सिवाय नये साल का एलमनक सरकारी छुट्टियां आदि और फ्रैंड ऐंड कम्पनी मथुरा के कारखाने की बनी हुई चीज़ें दवा आदि का विवरण है-यह डायरी इसी कारखाने से मिलती है-दाम नहीं मालूम-

१९०५ ई० की श्री वेंकटेश डायरी।

यह डायरी भी सब से अधिक उपयोगी आम के आम और गुठलियों के दाम हैं इस्में और बात के होते हुए इस्में दो चीज़ बहुत ही उपकारी दी गई है एक तो नये साल का तिथि पत्र और दूसरे हर एक बीमारियों के छोटे २ नुसखे-

जापान का संक्षिप्त इतिहास ।

इस पुस्तक में जापान देश की कुल बातें उनके आचार व्यवहार राज्य सम्बन्धी आदि का संक्षिप्त रूप से वर्णन है इस पुस्तक को चाहिये कि हर एक मनुष्य अवश्य पढ़ें और पढ़ कर कुछ तो ग्लानि अपने २ मन में लावैं कि हम लोग हर एक तरह कष्ट सह कर भी मक्खी मारा करते हैं और जापान के एक बालक से लेकर बुड्ढे तक तन मन सब सौंप कर अपने देश के उद्धार में तत्पर हैं-पुस्तक अवश्य देखने योग्य हैं रामनारायण मिश्र बी-ए-लिखित-काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुई है मूल्य ।=)

काश्मीर सुखमा ।

हिन्दी के एक मात्र अद्वितीय कवि पंडित श्रीधर पाठक को कौन न जानता होगा उन्हीं की रची हुई यह एक छोटी सी कविता है जिस्में काश्मीर का बहुत ही अच्छा वर्णन है कहीं २ पर प्राकृतिक वर्णन तो अत्यन्त ही चित्ताकर्षक है—

———

सात जनवरी को यहाँ की रामलीला नाट्य मण्डली ने भारतेन्दु बा—हरिश्चन्द्र के सत्य हरिश्चन्द्र का अभिनय बड़ाही उत्तमता के साथ दर्साया प्रत्येक पात्र अपने २ हिस्से को बड़ा ही चतुराई और सफ़ाई के साथ किया—इसकी विशेष समालोचना आगामी अंक में रहेगी—

—:o:—